वार्षिकांक

अक्तूबर 2000

मूल्य : 15 रुपये

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

ग्रामीण विकास कार्यक्रम
कितने कारगर, कितने सार्थक

वर्ष 1999–2000 में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की प्रगति का लेखा जोखा

हमारे देश की तीन चौथाई आबादी ग्रामीण भारत में निवास करती है और राष्ट्र तभी समर्थ और सम्पन्न होगा जब सभी ग्रामवासी गरीबी और पिछड़ेपन से मुक्त हों। ग्रामीण विकास मंत्रालय ऐसी अनेक योजनाएं और कार्यक्रम कार्यान्वित कर रहा है जिनका उद्देश्य है गरीबी का पूर्णतः उन्मूलन तथा तीव्र सामाजिक आर्थिक विकास लाना। तदनुसार समाज के अत्यंत उपेक्षित लोगों पर केन्द्रित बहुआयामी नीतियों द्वारा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में चतुर्दिक आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन लाना है। ग्रामीणों को स्वच्छ पेयजल, बेघर लोगों को घर तथा सभी ग्रामों को सड़कों से जोड़ने को उच्च प्राथमिकता दी जा रही है।

वर्ष 1999–2000 में इनमें से अनेक कार्यक्रमों को प्रभावकारी तथा स्थायित्व बढ़ाने के लिए पुनर्गठित किया गया। इसके अलावा क्षेत्र विकास, भूमि सुधार और आवास से संबंधित कार्यक्रमों को संशोधित किया गया।

ग्रामीण क्षेत्रों को सड़कों से जोड़ने का महत्व स्वतः स्पष्ट है। हमारे आधे से अधिक गांवों में अभी भी सड़कें नहीं हैं, परिणामतः अलग–थलग पड़े होने तथा बाजार तक उनकी पहुंच न होने के कारण वे विभिन्न कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों को शत–प्रतिशत सड़कों से जोड़ने की जिम्मेदारी ग्रामीण विकास मंत्रालय को सौंपी गई है। बारहमासी सड़कों के निर्माण के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों को जोड़ने के कार्यक्रम की रूपरेखा को वर्तमान में अंतिम रूप दिया जा रहा है ताकि 2000–2001 में गतिविधियां शुरू की जा सकें।

राष्ट्रीय आवास पर्यावास नीति की घोषणा की गई है जिसका उद्देश्य 'सबके लिए आवास' उपलब्ध कराना तथा गरीबों के लिए प्रतिवर्ष 20 लाख अतिरिक्त मकानों के निर्माण में सहायता करना है, जिसमें से 13 लाख मकान ग्रामीण क्षेत्रों में होंगे। एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में, कम लागत तथा पर्यावरण के अनुकूल निर्माण प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए समयबद्ध तरीके से ग्रामीण आवास की जरूरतों को पूरा करने के लिए मंत्रालय द्वारा एक राष्ट्रीय ग्रामीण आवास एवं पर्यावास मिशन की स्थापना की गई है। ग्रामीण आवास के क्षेत्र में शुरू किए जाने वाले नए कार्यों में ऋण सह सब्सिडी योजना शुरू करना, इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत कच्चे मकानों को पक्का बनाना, ग्रामीण निर्मित केन्द्रों की स्थापना करना तथा एक नया कार्यक्रम ग्रामीण आवास पर्यावास विकास भी सम्मिलित है। 1999–2000 के दौरान इन्दिरा आवास योजना के अंतर्गत 3,66,000 से अधिक मकान बनाए गए। 1985–86 में इसकी शुरूआत से लेकर अब तक इस योजना के अंतर्गत 62,000 से ज्यादा मकान बनाए जा चुके हैं।

सरकार के एजेंडा में आगामी पांच वर्षों में सभी गांवों को पेयजल उपलब्ध कराने की परिकल्पना की गई है इसलिए पेयजल क्षेत्र को समुचित महत्व दिया जा रहा है। देश के सभी गांवों को एक निश्चित समय–सीमा में स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए अक्तूबर 1999 में एक नया पेयजल आपूर्ति विभाग बनाया गया। ग्रामीण समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप ग्रामीण बुनियादी ढांचे में सुधार पर नए सिरे से जोर देने के लिए जवाहर रोजगार योजना को पुनः नया रूप दिया गया है तथा इसका नया नाम जवाहर ग्राम समृद्धि योजना है जो ग्राम स्तर पर बुनियादी ढांचे के विकास के लिए पूर्णतः समर्पित है तथा जिसे ग्राम पंचायत द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। वर्ष 1999–2000 के दौरान जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के अंतर्गत रोजगार के 947.54 लाख श्रमदिन का सृजन किया गया।

गांवों के आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए पंचायती राज संस्थानों को अधिकार प्रदान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

(शेष आवरण पृष्ठ तीन पर)

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय
की
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 45 अंक 12

आश्विन–कार्तिक 1922

अक्तूबर 2000

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र',
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
पी.सी. अहुजा

आवरण सज्जा
संजीव शाश्वती

फोटो साभार :
मीडिया डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

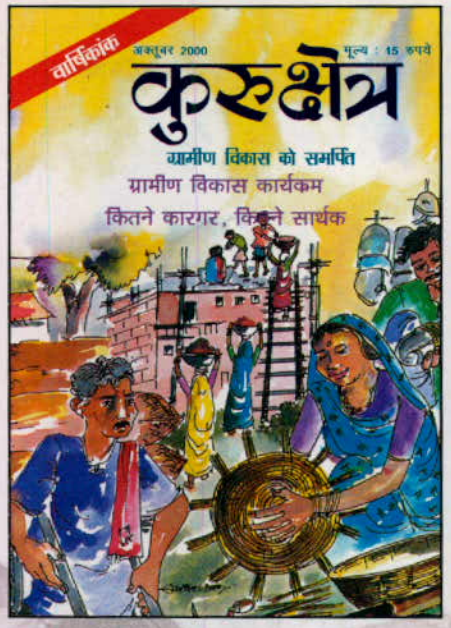

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
यह अंक : 15 रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- गरीबी हटाने के प्रयास : विश्लेषण तथा निष्कर्ष — प्रो. कामता प्रसाद — 2
- भूमंडलीकरण तथा गांवों का विकास — प्रो. कमल नयन काबरा — 7
- ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की समस्या — कृपा शंकर — 11
- ग्रामीण विकास की प्राथमिकताओं को बदलने की जरूरत — भारत डोगरा — 17
- ग्रामीण आवास नीति : एक विवेचन — भारती सिवस्वामी सिहाग — 21
- भारत में ग्रामीण लड़कियों – महिलाओं की शिक्षा : नीतिगत पहल और भावी निर्देश — उषा नायर — 25
- ग्राम विद्युतीकरण : एक लेखा जोखा — राम सुन्दर शुक्ल — 31
- ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों की सम्पूर्ण सम्बद्धता — प्रद्युम्न कुमार जैन, प्रवीर कुमार जैन, नीलम जैन — 37
- गांवों में शुद्ध पेय जल की व्यवस्था : समस्या और समाधान — नवीन पंत — 43
- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को कारगर बनाने में पंचायतों की भूमिका — डा. महीपाल — 47
- ग्रामीण निर्धनता : दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता — डा. लक्ष्मीरानी कुलश्रेष्ठ — 50
- आजादी के बाद गांवों का विकास — डा. गौरीशंकर राजहंस — 54
- ग्रामीण आवास समस्या : एक नीतिगत समीक्षा — प्रो. एस.एन. मिश्रा — 57
- सड़कें : ग्रामीण विकास की बुनियादी जरूरत — डा. कैलाश चन्द्र पपनै — 62
- ग्राम–विकास, ग्राम–स्वराज और जीवंत ग्राम — मस्तराम कपूर — 64

गरीबी हटाने के प्रयास : विश्लेषण तथा निष्कर्ष

प्रो. कामता प्रसाद*

हमारे देश में गरीबी उन्मूलन के प्रयास स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से लगातार चल रहे हैं लेकिन अभी तक इस क्षेत्र में वांछित सफलता नहीं मिल सकी है। लेखक ने इसके कारण गिनाते हुए बताया है कि जो धन गरीबी उन्मूलन के लिए निर्धारित किया जाता है, एक तो वह पर्याप्त नहीं होता और दूसरा उसमें से भी एक बड़ा भाग बीच में ही हड़प लिया जाता है। अब निजीकरण के दौर का भी इन गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। लेखक ने सुझाव दिया है कि अनाज, कपड़ा आदि गरीबों को सस्ते दामों पर दिए जाएं, भूमिहीनों को भूमि दी जाए और ज्यादा से ज्यादा लोगों के पूर्ण रोजगार की व्यवस्था की जाए। इसके अलावा गरीबी दूर करने के साधनों की उपलब्धता बढ़ाई जाए। इसके लिए उच्च वर्ग के लोगों के सुख–सुविधा के साधन जुटाने पर होने वाले खर्च में कटौती की जा सकती है।

गरीबी तथा बेरोजगारी दूर करने के प्रयत्नों की चर्चा करीब 50 वर्ष से सुनी जा रही है। सभी पंचवर्षीय योजनाओं तथा सरकार के कई एक घोषणा पत्रों में उन्हें दूर करने के लक्ष्य पर जोर दिया गया है। इसके लिए विशेष रूप से अनेक योजनाएं भी लागू की गई हैं। फिर भी परिणाम संतोषजनक बिल्कुल नहीं हैं। सरकार की तरफ से कितनी बार कहा गया कि अगले दस वर्षों में गरीबी दूर कर दी जाएगी। पर ऐसा नहीं हुआ और इस लक्ष्य को पूरा करने का समय बढ़ता ही चला गया। इस सम्बन्ध में सबसे निकटतम व्यापक आंकड़े 1993–94 के हैं। इनके अनुसार इस वर्ष में देश की आबादी का करीब 36 प्रतिशत गरीबी की रेखा से नीचे था। ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत 37.27 प्रतिशत था जबकि शहरी क्षेत्रों में 32.36 प्रतिशत।

इसका मतलब यह नहीं कि इस दिशा में भी कुछ भी प्रगति नहीं हुई है। कुछ प्रगति अवश्य हुई है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार 1973–74 में देश की जनसंख्या का 54.88 यानी करीब 55 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे था। दस साल बाद, 1983 यह प्रतिशत घटकर 44.48 हो गया और दस साल बाद 1993–94 में यह घटकर 35.97 यानी 36 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार 20 वर्षों में इसमें 19 प्रतिशत की गिरावट आई है। पर चूंकि इसी बीच जनसंख्या में वृद्धि भी हुई है, अतः गरीबों की संख्या में कोई विशेष कमी नहीं आई है। 1973–74 में ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों को मिलाकर गरीबों की संख्या 32.13 करोड़ थी जबकि 1993–94 में भी उनकी संख्या 32.03 करोड़ यानी करीब उसी के बराबर। कुछ एक राज्यों – बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा में तो इनकी संख्या पहले से भी बढ़ गई है। जैसे बिहार में 1973–74 में 3.70 करोड़ से बढ़कर 1993–94 में 4.93 करोड़, उत्तर

* अध्यक्ष, संसाधन प्रबन्ध एवं आर्थिक विकास संस्थान, दिल्ली

प्रदेश में उसी अवधि में 5.35 करोड़ से बढ़कर 6.04 करोड़, हरियाणा में 36 लाख से बढ़कर 44 लाख, हिमाचल प्रदेश में 9.73 लाख से बढ़कर 15.86 लाख, महाराष्ट्र में 2.87 करोड़ से बढ़कर 3.85 करोड़, उड़ीसा में 1.54 करोड़ से बढ़कर 1.60 करोड़ हो गई है। यदि इसी प्रकार का रुझान कायम रहा तो गरीबी दूर होने में और 30–35 वर्ष लग सकते हैं। तब तक क्या गरीब जनता शान्त और निष्क्रिय बैठी रहेगी? क्या सामाजिक तनाव नहीं बढ़ेगा जिसके आसार साफ दिखाई पड़ रहे हैं? ये एक विचारणीय प्रश्न है।

असफलता के कारण

यह दलील दी जा सकती है और दी जाती है कि इसी बीच देश की जनसंख्या बढ़ने के चलते गरीबों की संख्या बढ़ती गई। पर यह तथ्य कोई नया या अज्ञात नहीं था। नीति–निर्धारकों को इस बात का अनुमान था कि गरीबों की संख्या किस दर से बढ़ रही है। अतः उसे ध्यान में रखकर उपयुक्त नीतियां बनाना उनका फर्ज था। यह ठीक है कि इस तथ्य के चलते समस्या ज्यादा जटिल बनती गई, पर यदि इच्छा–शक्ति रहती तो इस जटिलता से भी निपटा जा सकता था। यह भी कहा जा सकता है कि नीतियों का अच्छी तरह से प्रतिपादन नहीं हो सका जिसके चलते वांछित फल नहीं मिल सके। इसमें कोई दो राय नहीं है कि हमारे देश में योजनाओं को लागू करने की प्रक्रिया असंतोषजनक है। इस सम्बन्ध में अनेक अध्ययन हुए हैं और प्रायः सभी का यही निष्कर्ष है। लाभार्थियों के चयन में गड़बड़ी होती है, गलत स्कीम या कार्य लिए जाते हैं जिनसे आमदनी कम होती है, तथा प्रशासन में फैले हुए भ्रष्टाचार के चलते लाभान्वितों के लिए निर्धारित लाभ का एक हिस्सा सरकारी अधिकारियों या बिचौलियों की जेब में जाता है। पर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि यह कारण उतना महत्तवपूर्ण नहीं है जितना कि बताया जाता है। जहां योजनाओं को लागू करने की प्रकिया बहुत कुछ ठीक पाई गई है, वहां भी पूरी सफलता नहीं मिली है। फिर एक बात और है। छोटे समय के लिए इस दलील को ठीक समझा जा सकता है पर दीर्घकालीन में इस कमी को उपयुक्त नीतियों द्वारा सुधारा जा सकता है। यदि इस सुधार के लिए कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाए गए तो इसे रणनीति में कमी मानी जाएगी।

दिहाड़ी मजदूरी कार्यक्रम गरीबी दूर करने में काफी कारगर

नीतियों में खामियां

असल बात तो यह है कि गरीबी को पूर्णतया दूर करने में जो असफलता मिली है उसके मूल कारण नीतियों में कमी, योजना के स्वरूप में खामियां तथा अपर्याप्त इच्छा–शक्ति है। ये कमियां आरम्भ से ही पाई जा रहीं हैं और अभी भी मौजूद हैं। आरम्भ की पंचवर्षीय योजनाओं की यह मान्यता थी कि गरीबी उन्मूलन के लिए कुछ विशेष कार्रवाई की जरूरत नहीं है। विकास के कार्यक्रमों, जैसे कृषि, उद्योग धन्धों, रेल और परिवहन के साधनों व्यापार आदि के विकास के चलते गरीबों को रोजगार मिलेगा और उनकी गरीबी दूर हो जाएगी। पर योजना अधिकारियों के दिमाग में यह बात नहीं आई कि क्या विकास की सम्भावित रफ्तार उतनी तेज थी कि सभी बेरोजगार लोगों को रोजगार मिल सकेगा? यह भी नहीं सोचा गया कि इस प्रक्रिया को पूरा होने में कितने वर्ष या दशक लग जाएगे। विकास की दर इतनी धीमी रही है कि गरीबी का दायरा घटने के बदले बढ़ता ही गया। करीब बीस वर्ष बाद जब इस बात का ज्ञान अधिकारियों को हुआ तो नीतियों में परिवर्तन लाया गया। 1970 का दशक प्रयोग का दशक माना जा सकता है। इस दशक में नई नीतियों की दिशा उभरकर सामने आई। और 1980 के दशक तक आते–आते नीतियां करीब निश्चित–सी हो गईं जो प्रायः अभी भी चल रही हैं।

इन नीतियों का उद्देश्य गरीबी की रेखा के नीचे के लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना है जिससे उनकी आमदनी बढ़े और वे गरीबी की रेखा के ऊपर चले जाएं। इसके लिए स्वरोजगार तथा मजदूरी, दोनों ही तरीकों को अपनाया गया। स्वरोजगार के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा मजदूरी रोजगार के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी योजना चलाई गई। आगे चलकर दोनों रोजगार योजनाओं को मिलाकर जवाहर रोजगार योजना चलाई गई। फिर इसी क्रम में कुछ वर्ष बाद सुनिश्चित रोजगार योजना भी चलाई गई। पंचायती व्यवस्था को मजबूत करने के लिए संविधान में संशोधन किया गया। 1990 के दशक के आते–आते ये सभी योजनाएं कुछ जोर पकड़ रही थीं कि सरकार ने नई आर्थिक नीतियां अपनाईं जिसके अन्तर्गत निजी विनियोग पर विशेष जोर दिया जाने लगा। यद्यपि गरीबी दूर करने की विशेष योजनाएं चलती रहीं, पर उन पर खर्च की जाने वाली रकम, जो पहले भी अत्यन्त कम थी, और भी नियंत्रित हो गई। एक गलत धारणा का प्रचार किया जाने लगा कि निजी उद्योगों को प्रोत्साहन देने से

विकास की दर बढ़ेगी और इसके चलते देश की गरीबी अपने आप ही कम हो जाएगी। हमारे नीति–निर्धारक इस बात को भूल गए कि इसी तरह की विचारधारा स्वतंत्रता के बाद प्रथम बीस वर्षों तक चली थी जो पूर्णतया असफल पाई गई। वर्तमान उद्योग प्रणाली के आधार पर होने वाले विकास के चलते गरीबी तभी दूर हो सकती है जबकि विकास की दर कम से कम 10–12 प्रतिशत हो जिससे कि सभी को रोजगार मिल सके। पर भारत में तो यह दर 5–6 प्रतिशत औसत से ज्यादा जाती ही नहीं है। कभी–कभी 7 प्रतिशत तक चली जाती है। इस दर से गरीबी का उन्मूलन असम्भव है। फिर इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि निजी उद्योग पिछड़े क्षेत्रों में, जहां गरीब लोगों का जमघट रहता है, जाने से कतराते हैं। निजी उद्योग अधिक विकसित क्षेत्रों में ही जाना चाहते हैं क्योंकि वहां उन्हें ज्यादा मुनाफा मिलने की सम्भावना रहती है। नई नीति के लागू करने के बाद भी यही बात पाई गई है। बिहार, असम आदि गरीब राज्यों में निजी उद्योग बिल्कुल ही नहीं गए हैं फिर इसके द्वारा गरीबी कैसे दूर हो सकती है? अभी हाल के सर्वेक्षणों से पता चला है कि आर्थिक उदारीकरण के बाद गरीबी दूर करने के प्रयत्नों को धक्का लगा है और गरीबों का प्रतिशत बढ़ा है। अतः जरूरी है कि सरकार इस प्रश्न पर पुनः विचार करे और गरीबी दूर करने के सही उपायों पर विशेष जोर दे।

गरीबी दूर करने के सही उपाय

ये सही उपाय क्या है? इस पर विचार करना जरूरी है। गरीबी दूर करने के लिए गरीबों के उपभोग की सामग्री जैसे अनाज, कपड़ा आदि सस्ते दरों पर दिया जा सकता है। कई राज्यों, विशेषकर आन्ध्र प्रदेश ने इस नीति का अनुसरण किया है। पर जैसा कि अनुभव बताता है, इस नीति को लम्बे समय तक चलाना आसान नहीं है। सरकार की वित्तीय व्यवस्था पर इसका बुरा असर पड़ा है। फिर सबसे बड़ी बात तो यह है कि अनुदान के चलते गरीबी लोगों में मुफ्तखोरी की आदत पड़ जाती है जिससे मेहनत करने में दिलचस्पी कम हो जाती है। इससे राष्ट्रीय उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। गरीबी दूर करने के लिए भूमि का बटंवारा भी एक सशक्त तरीका है। ज्यादातर वही लोग गरीब हैं जिनके पास कृषि के लायक भूमि नहीं है या अपर्याप्त मात्रा में है। अतः यदि उन्हें उपयुक्त मात्रा में

गरीबी को दूर करने का मुख्य उपाय गरीबों को पूर्ण रोजगार देना है। यह रोजगार स्वरोजगार तथा मजदूरी रोजगार दोनों हो सकते हैं। 1970 के बाद सरकार की नीतियों का भी यही उद्देश्य रहा है। अतः एक तरह से ये नीतियां सही हैं। पर फिर भी इनमें अनेक त्रुटियां हैं जिनके चलते गरीबी दूर करने में पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

भूमि का आवंटन कर दिया जाय तो वे स्वयं उत्पादन कर अपनी गरीबी को दूर कर सकते हैं। पर यह सर्वविदित है कि भारत में वितरण करने लायक भूमि की अत्यन्त कमी है जो जनसंख्या के बढ़ने के साथ दिनों–दिन और भी कम होती जा रही है। अतः केवल इस माध्यम से समस्या का बिल्कुल समाधान नहीं हो सकता है। हां, यह तरीका पूरक के रूप में काम कर सकता है। अतः जिस क्षेत्र या गांव में जितनी भी सम्भावना हो, उसका उपयोग करना चाहिए।

पूर्ण रोजगार का अभाव

गरीबी को दूर करने का मुख्य उपाय गरीबों को पूर्ण रोजगार देना है। यह रोजगार स्वरोजगार तथा मजदूरी रोजगार दोनों हो सकते हैं। 1970 के बाद सरकार की नीतियों का भी यही उद्देश्य रहा है। अतः एक तरह से ये नीतियां सही हैं। पर फिर भी इनमें अनेक त्रुटियां हैं जिनके चलते गरीबी दूर करने में पूर्ण सफलता नहीं मिली है। सबसे बड़ी मौलिक बात तो यह है कि रोजगार के द्वारा किसी भी गरीब व्यक्ति को गरीबी की रेखा के ऊपर तभी उठाया जा सकता है जबकि उसे मजदूरी या स्वरोजगार से यथेष्ठ मात्रा में आमदनी प्राप्त हो। केवल थोड़ी–बहुत आमदनी बढ़ने से काम नहीं चलेगा। उदाहरण के लिए मान लें कि किसी व्यक्ति की आय नौ हजार रुपये सालाना है तथा गरीबी की रेखा पार करने के लिए 15 हजार रुपये सालाना आमदनी चाहिए। यदि किसी स्वरोजगार योजना से उसे तीन हजार रूपये की अतिरिक्त आमदनी होती है, तो इसके बाद भी उसकी आमदनी 12 हजार रुपये की होगी जो कि गरीबी की रेखा से नीचे ही है। इस रेखा से ऊपर जाने के लिए अतिरिक्त आमदनी कम से कम छः हजार रुपये होनी चाहिए। इसके लिए सरकारी सहायता की मात्रा काफी अधिक होनी चाहिए। पर साधनों के अभाव में सरकारी सहायता पर्याप्त रूप से नहीं मिल पाती है। आई.आर. डी.पी. के आंकड़ों को देखा जा सकता है। प्रति व्यक्ति सहायता की मात्रा इतनी कम रहती है कि योजना के सही चलने के बावजूद भी गरीबी उन्मूलन पर विशेष असर नहीं पड़ता केवल वही लोग गरीबी रेखा के ऊपर जा सकते हैं जिनकी पहले की आमदनी गरीबी रेखा के आसपास हो जिससे कि थोड़ी बहुत वृद्धि के फलस्वरूप वे उस रेखा के ऊपर जा सकते हैं। पर जिनकी हालत अधिक खराब है, उनके लिए इस रेखा के ऊपर उठना कठिन होता है। स्व रोजगार के छोटे–छोटे साधनों की उप्तादकता भी प्रायः कम ही रहती है। उस उत्पादकता को बढ़ाने का कोई ठोस प्रयास नहीं किया गया है। गरीबों से सम्बन्धित प्राद्योगिकी की उन्नति नहीं के बराबर हुई है। साथ ही संस्थागत तथा आधारभूत ढांचे में भी विशेष सुधार नहीं हो पाया है। फलस्वरूप उत्पादकता में आवश्यकतानुसार वृद्धि नहीं हो पाई है।

साधनों की कमी

सबसे बड़ी कमी तो गरीबी दूर करने के लिए आवंटित साधनों की कमी है। इसके चलते किसी भी योजना को व्यापक रूप से नहीं चलाया जाता है। वैसे तो पूरे राष्ट्र के नाम पर निकाली गई धन राशि काफी बड़ी दिखाई पड़ती है। पर जब उस धन राशि को गरीबों की संख्या से भाग देकर प्रति गरीब

व्यक्ति का हिस्सा निकालते हैं तो यह धनराशि इतनी छोटी हो जाती है कि उसका प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं हो पाता। एक तरफ तो कम धनराशि तो दूसरी तरफ लाभान्वितों की संख्या बढ़ाने पर जोर जिससे कि सरकार को प्रचार करने में आसानी हो कि अनेक लोगों की लाभान्वित किया गया। फलस्वरूप प्रति लाभान्वित व्यक्ति पर खर्च की गई राशि अपर्याप्त रहती है। कुछ साल पहले योजना आयोग के मूल्यांकन विभाग ने जवाहर रोजगार योजना का मूल्यांकन किया था। इससे यह पता लगा कि इस योजना के अन्तर्गत धनराशि इतनी कम आवंटित की जाती है कि प्रत्येक लाभान्वित व्यक्ति को औसत रूप में एक वर्ष में केवल 16 दिन का रोजगार ही मिल पाता है। इससे गरीबी का उन्मूलन असम्भव है। यही हाल और सभी योजनाओं का है। सरकार के पास इस कार्य के लिए अधिक धन देने की कमी नहीं है बशर्ते कि सरकार चाहे। पर आरम्भ से यह परिपाटी बनी है कि सरकारी खजाने का अधिकांश भाग देश का सशक्त वर्ग किसी न किसी प्रकार से अपनी सुख–सुविधा के लिए खर्च करा देता है और जो बची–खुची रकम होती है, उसे ही गरीबी उन्मूलन के कार्य के लिए निकाला जाता है। राजनेताओं तथा प्रशासकों द्वारा यह कहना कि गरीबी उन्मूलन को प्राथमिकता दी जाएगी तथा इसके लिए साधनों का अभाव नहीं होगा, एक प्रचार मात्र है। वास्तविक स्थिति कुछ और ही है जिसके गवाह स्वंय सरकारी आंकड़े हैं। यही बात सरकार की अन्य महत्वपूर्ण नीतियों पर भी लागू होती है। विकास की बड़ी–बड़ी योजनाओं जैसे जलाशय, कल कारखाने, विद्युत परियोजनाएं बनाते समय अनेक परिवार विस्थापित हो जाते है तथा मुआवजे मिलने के बाद भी रोजगार के अभाव में धीरे–धीरे गरीबों की श्रेणी में चले जाते हैं। देश का विकास उनके लिए विनाश बन जाता है। बड़े–बड़े उद्योगों के साथ प्रतिद्वंद्वता के चलते अनेक छोटे–मोटे उद्योग बन्द हो जाते है तथा उनमें काम करने वाले लोग गरीबों की श्रेणी में चले जाते हैं। जब तक देश के आर्थिक विकास में यानी सरकार के सभी विभागों में गरीबी उन्मूलन को सर्वाधिक प्राथमिकता नहीं दी जाएगी तब तक यही होता रहेगा।

इस सन्दर्भ में राष्ट्रकवि दिनकर की दो पंक्तियां महत्तवपूर्ण हैं जो उन्होंने बहुत साल पहले लिखी थीं। ये पंक्तियां हैं:

मां का आंचल है फटा हुआ, इन दो टुकड़ों को सीना है।

देखें देता कौन लहू, दे सकता कौन पसीना है।

इन दो पंक्तियों में गरीबी का स्वरूप तथा गरीबी का समाधान दोनो ही सम्मिलित हैं। जब तक समाज के वे लोग, जो गरीब नहीं हैं, विशेषकर वे जिनकी माली हालत बहुत अच्छी है, गरीबों के लिए अपना पसीना बहाने तथा लहू देने को यानी अपनी सुख–सुविधा के त्याग करने की इच्छा नहीं रहते तब तक गरीबी का उन्मूलन आसान नहीं होगा। समाज में विकास के साधन सीमित हैं। अतः इन सीमित साधनों में से गरीबों के विकास–कार्य

प्रशिक्षण द्वारा युवाओं को अपने पैरों पर खड़ा करने के प्रयास

पर पर्याप्त मात्रा में तभी खर्च किया जा सकता है जबकि उन्हें अन्य कार्यक्रमों पर कम किया जा सके। पर समाज का धनी तथा सशक्त वर्ग, जिसमें मध्यम वर्ग के लोग भी शामिल हैं, अपनी सुख सुविधा में कमी करने को कतई तैयार नहीं रहते हैं। फलस्वरूप अभी तक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में न तो कोई विशेष तीव्रता आ पाई है और न उसकी

एक गलत धारणा का प्रचार किया जाने लगा कि निजी उद्योगों को प्रोत्साहन देने से विकास की दर बढ़ेगी और इसके चलते देश की गरीबी अपने आप ही कम हो जाएगी।

व्यापकता बढ़ी है। दूसरी तरफ जनसंख्या बढ़ने के चलते गरीबों की संख्या भी बढ़ती रहती है। फलस्वरूप पिछले बीस वर्षों के तथाकथित सघन प्रयत्नों के बाद भी गरीबी की समस्या देश के लिए एक महान चुनौती बनी हुई है।

दुःख की बात तो यह है कि गरीबी उन्मूलन की बात करते समय अधिकांश प्रशासक तथा विशेषज्ञ उपयुक्त मूल मंत्रों को भूल जाते हैं। अधिकतर लोग एक दो छोटी–छोटी बातों का विश्लेषण कर ही संतुष्ट हो जाते हैं। तथाकथित विशेषज्ञों की अज्ञानता के चलते भी इस विषय में अनेक भ्रान्तियां फैली हुई हैं जिनके कारण प्रयास की दिशा कभी–कभी गलत हो जाती है।

सुझाव

गरीबी दूर करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना होगा।

- सबसे बड़ी बात तो यह है कि गरीबी दूर करने के उद्देश्य को सही अर्थ में प्राथमिकता मिलनी चाहिए न कि केवल दिखावे के लिए। इसके लिए विकास की रणनीति तथा आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ी हुई नीतियों का पुर्नावलोकन करना पड़ेगा। इस कार्य में सरकार के अनेक विभागों के कार्यक्रमों में परिवर्तन करना पड़ेगा जिससे कि अधिक से अधिक रोजगार पैदा करने वाले कार्यक्रमों को प्रोत्साहन मिले।
- गरीबी की समस्या की व्यापकता के अनुरूप इसके लिए धन का आंवटन होना चाहिए। अभी तक इस बात की उपेक्षा की गई है और बहुत ही कम धन का आंवटन होता रहा है। गरीबों को रोजगार देने वाले कार्यक्रमों को धन देने को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए न कि आखिरी। यह तभी सम्भव हो पाएगा जब कि सरकार अपनी फिजूलखर्ची कम कर दे तथा कम आवश्यक मदों से धन हटाकर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर खर्च करे। यह काम कठिन तो है पर असम्भव नहीं। जरूरत है वांछित इच्छाशक्ति की।
- गरीबी दूर करने के लिए आर्थिक विकास जरूरी है अतः विकास के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों को बनाना चाहिए। इसके लिए कार्यक्रमों को बनाने में अधिक सावधानी बरतनी पड़ेगी। कार्यक्रम ऐसे हों जिनसे गरीबों को इतनी आमदनी मिले कि पूरा दिन काम करने पर उनका परिवार गरीबी की रेखा से ऊपर चला जाए। लम्बे समय तक यह तभी सम्भव है जबकि कार्यक्रमों की उत्पादकता श्रमिकों को मिलने वाली आमदनी से ज्यादा हो। इसके लिए तकनीकी विकास तथा तकनीकी प्रशिक्षण पर यथेष्ट बल देना होगा। साथ ही गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए आवश्यक इन्फ्रास्ट्रचर पर भी जोर देना होगा। उत्पादकता बढ़ाने के लिए यह वांछनीय है।
- सीमित पूंजी के बावजूद अधिक से अधिक गरीब लोगों को रोजगार देने के लिए श्रममुखी (labour intensive) टेक्नालाजी का चयन जरूरी है बशर्ते कि उसकी उत्पादकता का स्तर ऊपर लिखे मापदंड से कम न हो। साथ में ऐसी भी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि गरीबों के उपभोग में आने वाली वस्तुओं जैसे भोजन, कपड़ा, जलावन की लकड़ी आदि का अधिक यथेष्ट उत्पादन हो और इनकी कीमतें बढ़ने न पाएं।
- गरीबों के लिए उपयुक्त पुनर्वास की नीति बननी चाहिए जिससे कि विकास की बड़ी बड़ी योजनाओं के हानिकारक परिणामों से उन्हें बचाया जा सके।
- गरीबों को सीधे तथा व्यक्तिगत रूप से लाभ पहुचाने वाली योजनाओं जैसे आई. आर.डी.पी. विभिन्न प्रकार की स्वरोजगार

अभी हाल के सर्वेक्षणों से पता चला है कि आर्थिक उदारीकरण के बाद गरीबी दूर करने के प्रयत्नों को धक्का लगा है और गरीबों का प्रतिशत बढ़ा है।

योंजनाएं आदि को क्षेत्रीय विकास के साथ जोड़ना चाहिए जिससे कि उनकी उत्पादकता में वृद्धि हो। पिछड़े हुए क्षेत्रों की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उनके लिए विभिन्न कार्यक्रमों का अलग से लक्ष्य रखना चाहिए।

- कृषि देश का प्रमुख व्यवसाय है जिसमें अधिकांश गरीब लगे हुए हैं। अतः कृषि के विकास पर, विशेषकर पिछड़े क्षेत्र, सूखा तथा बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में, कृषि के विकास पर विशेष जोर देना होगा। पर कृषि पर निर्भर रहने से ही सभी गरीबों की समस्या दूर नहीं हो सकती क्योंकि कृषि की क्षमता की भी सीमा है। अतः अन्य व्यवसायों जैसे – ग्रामीण उद्योग, पशुपालन, मछली पालन, विभिन्न प्रकार की सेवाओं पर भी ध्यान देना होगा।
- सत्ता का पूर्णतया विकेन्द्रीकरण अति आवश्यक है जिससे प्रत्येक क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनके लिए उपयुक्त कार्यक्रम बनाएं जाएं और उनका सही ढंग से कार्यान्यवन तथा मानिटरिंग है। इसके लिए पंचायतों को पर्याप्त शक्ति और धन देने की व्यवस्था करनी होगी तथा राज्य सरकार की शक्तियों में उसी मात्रा में कमी करनी होगी। साथ ही पंचायतों को ग्राम सभा के प्रति पूरी तरह से उत्तरदायित्व की व्यवस्था भी करनी होगी तभी सरकारी पैसे का सदुपयोग होगा। ❑

भूमंडलीकरण तथा गांवों का विकास

प्रो. कमल नयन काबरा*

वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण विश्व की कुछ बड़ी कम्पनियों को लाभ पहुंच रहा है। इसमें गांवों या गरीबों की समस्याओं का समाधान करने के लिए कोई भी प्रावधान नहीं है। ये विचार व्यक्त करते हुए लेखक ने कहा है कि यह कहना भी गलत साबित हुआ है कि नुकसान उठाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के लिए धन का आवंटन बढाया जाएगा। लेखक ने अंत में उद्‌गार व्यक्त किए हैं कि यदि वैश्वीकरण के तहत सभी देश अपनी प्रतिपूरकता और समानतापूर्ण आधार पर व्यापार और निवेश बढ़ाते तथा परस्पर सहयोग से नई तकनीकें विकसित करते और यह सब गांवों के हित में होता तो वैश्वीकरण की बात ही कुछ और होती।

वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण के बारे में अनेक मिथक और मिथ्या धारणाएं प्रचारित की गई हैं। एक विचार के रूप में तथा विभिन्न देशों में देखी जाने वाली ठोस वास्तविकता के धरातल पर भूमंडलीकरण के अलग–अलग चेहरे हैं। यदि भूमंडलीकरण की अवधारणा आज के संसार की यथार्थ स्थिति का सही बयान करती तो इस लेख का शीर्षक "भूमंडलीकरण तथा गांवों का विकास" रखा ही नहीं जा सकता था। तब तो ज्यादा उचित शीर्षक होता "भूमंडलीकरण के कारण गांवों और गरीबों की बदतर होती स्थिति"। इस महत्वपूर्ण सवाल पर कई नजरियों से विचार किया जा सकता है। ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में राजनीति की भूमिका समझे बिना, ज्ञान–विज्ञान के पीछे खड़ी तथा उसको विशेष रूप प्रदान करती ताकतों का जायजा लिए बिना, हम भूमंडलीकरण के प्रभावों को नहीं समझ सकते। एक लुभावने और आकर्षक शब्द, विचार तथा नीतिगत यथार्थ के रूप में वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण या जगतीकरण एक बहुत ही अहम भूमिका निभा रहा है आज की दुनिया में। इसलिए हम इस चर्चा की शुरूआत इसी पक्ष से करते हैं।

* प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली

वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण एक बहु–प्रचलित शब्द बन गया है। मीडिया में बार–बार उछाले गए शब्दों की एक अजीब नियति होती है : जितना ज्यादा चलन, उतनी ही उसके बारे में सही समझ की कमी। इतना ही नहीं 'जिसकी रही भावना जैसी' की तर्ज पर अपनी मर्जी से अलग–अलग अर्थ भी निकाले जाने लगते है। इस विविधता तथा विचित्रता से लाभ होता है उनको जो इन शब्दावलियों को प्रचलित करते हैं और लोगों की जबान पर चढ़ा देते हैं – तोता रटन्त की तरह। विकास, विकासशील देश, इक्कीसवीं सदी की चुनौतियां, आर्थिक–तकनीकी प्रगति, सूचना–क्रांति, तीसरी दुनिया, जैसे शब्दों की एक लम्बी सूची बनाई जा सकती है। इन शब्दों का एक सीधा–सा सामान्य अर्थ होता है। परन्तु इन सबके पीछे एक मकसद, एक स्वार्थ, एक छिपाव, एक विशेष नीतिगत रुझान, यहां तक की एक जीवन–दृष्टि और सोच तक छिपा रहता है। इनके इस्तेमाल के पीछे बहुत गहरे विचारधारात्मक, राष्ट्रीय, वर्गगत तथा अन्य सीमित निहित स्वार्थ होते हैं।

दुनिया में लम्बे अतीत से गैर–बराबरी, शोषण तथा विपन्नता के नये रूपों के प्रसार के साथ–साथ लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का भी प्रसार हुआ है। यह अन्तर्विरोध कैसे इतने लम्बे समय से चलता जा रहा है यह सोच–विचार और जांच पड़ताल का विषय है। परन्तु इस मामले में एक बात काफी विश्वास के साथ कही जा सकती है। शब्दों, भाषा, जन–संचार के साधनों तथा विचार और ज्ञान सृजन की प्रक्रिया पर नियंत्रण तथा उसका विशेष स्वार्थों के लिए इतना छद्‌म और चतुराई, चालाकी भरा उपयोग हमेशा से शक्तिशाली तबकों का धारदार हथियार रहा है। ऐसी प्रक्रियाओं की असली मंशा की भनक आम आदमी को लगना तो दरकिनार, बड़े बड़े धुरंधरों तक को नहीं लग पाती है। लोकतंत्र की सर्वशक्तिकारक मूल–भावना तथा आज की विद्यमान समाज–व्यवस्था की सत्ता, सम्पदा, सुख और सुविधा की चन्द हाथों तथा तबकों में केन्द्रित करने की प्रवृत्ति के सह–अस्तित्व को संभव करने में शब्दों, ज्ञान तथा समझ को विशेष रंग देने का, उसे अदृश्य तरीकों से नियंत्रित करने का भी काफी बड़ा हाथ रहता है।

वैश्वीकरण की अवधारणा इसी निहित स्वाथपोषक, छल छद्‌मपूर्ण 'ज्ञान' की उपज है। एक बहु–प्रचलित अर्थ में वैश्वीकरण से तात्पर्य दुनिया में सम्पर्क साधनों की क्रांतिकारी तरक्की के कारण एक सिकुड़ती हुई दुनिया में विभिन्न देशों का आपस में सघन रूप से

संबंधित तथा पारस्परिक रूप से निर्भर होना है। इस विचार में एक संभावना को अपने आप सत्य में परिणित घटना या प्रवृत्ति मान लिया गया है और साथ ही इसके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं और अर्थों को नजरअंदाज कर दिया गया है। देश को

विश्व की आधी से अधिक जनता दो जून की रोटी तथा नियमित पर्याप्त आजीविका की जुगाड़ नहीं बिठा पाती है। उनकी दुनिया अपने गांव–नगर के इर्द गिर्द तक ही सीमित है और उसके व्यापक होने के आसार दूर–दूर तक नजर नहीं आते हैं। उनके आर्थिक–सामाजिक संबंधों का क्षेत्रीय दायरा बहुत सीमित है, सिवाय इस बात के कि वे विश्वव्यापी शक्तियों की अबाध एकांगी बढ़त के दुष्परिणाम निष्क्रिय रूप से झेलते हैं।

इकाई मानने के कारण यह बात पूरी तरह नजरअंदाज कर दी गई है कि किसी देश के अन्दर कौन और कितने लोग इस विश्वव्यापी निर्भरता में सक्रिय और सकारात्मक भागीदारी कर पाते हैं। विश्व की आधी से अधिक जनता दो जून की रोटी तथा नियमित पर्याप्त आजीविका की जुगाड़ नहीं बिठा पाती है। उनकी दुनिया अपने गांव–नगर के इर्द गिर्द तक ही सीमित है और उसके व्यापक होने के आसार दूर–दूर तक नजर नहीं आते हैं। उनके आर्थिकसामाजिक संबंधों का क्षेत्रीय दायरा बहुत सीमित है, सिवाय इस बात के कि वे विश्वव्यापी शक्तियों की अबाध एकांगी बढ़त के दुष्परिणाम निष्क्रिय रूप से झेलते हैं। इसी तरह दुनिया के ज्यादातर देश मात्र पचास के करीब बहुदेशीय कम्पनियों से भी कम वित्तीय और आर्थिक शक्ति हासिल कर पाए हैं। इन गरीब, शोषित देशों की नीतियों, राजनीति, अर्थनीति और जीवन–शैली तथा इन गरीब मुल्कों के साधन–सम्पन्न तबकों के दिलो–दिमाग पर इन कम्पनियों और इनके मूल गृह राष्ट्रों का दबदबा तथा तिलिस्म हावी हो चुका है। वे अपनी राष्ट्रीय नियति को इन देशों और कम्पनियों के नक्शे कदम पर चलाने का मन बनाने के लिए "स्वैच्छिक" रूप से मजबूर हो चुके हैं। इस तरह की कुछ लोगों के प्रभुत्ववाली वैश्वीकृत व्यवस्था में इन धनी–मानी देशों की आम जनता तक भी शरीक नहीं हो पाई है। वहां का विशाल मध्यवर्ग बहुमुखी असुरक्षा से ग्रसित है तथा अपने औपचारिक अधिकारों को लागू करवाने में असमर्थ होता जा रहा है। उनकी जीवन डोर उनके अपने तथा अन्य समकक्ष देशों की वित्तीय–आर्थिक शक्तियों के हाथ में आ गयी है। वहां भी गरीब, विपन्न और असहाय तबकों की तादाद और उनका कष्ट बढ़ रहा है।

इस तरह यथार्थ के धरातल पर हम भूमंडलीकरण का एक दूसरा चित्र देखते हैं। वह चित्र है एक विश्वव्यापी प्रभुत्व तथा दबदबे की बढ़त और उसका केन्द्रीकरण करने वाली व्यवस्था का निरन्तर मजबूत तथा व्यापक बनता रूप जिसमें सभी देशों के शीर्षस्थ लोग आपस में जुड़ते जा रहे हैं। खास कर उनके अत्याधुनिक तकनीक वाले तथा वित्तीय क्षेत्र गहरे जुड़ गए हैं। उनकी सोच, बाध्यताएं नीति–निर्माण के विकल्प, जीवन–शैली, मूल्य और मान्यताएं एक–सी बनती जा रही हैं।

इस तरह भूमंडलीकरण अपने आदर्श तथा सैद्धांतिक रूप से बिल्कुल अलग विश्व आर्थिक पटल पर सीमित स्वार्थों को बढ़ाने वाला एक नीतिगत रुझान तथा माडल बन जाता है। सन् 1980 के दशक में यूरोप तथा उत्तरी अमरीका में नव–उदारीकरण का दबदबा बढ़ा। इसके तहत बाजार की शक्तियों को देश तथा विदेश दोनों स्तरों पर खुली छूट देने की नीति को एक प्रभावी नीतिगत आदर्श के रूप में पेश किया गया। काफी तेज आर्थिक बढ़त तथा अपेक्षाकृत कम आर्थिक उतार– चढ़ाव और दिक्कतों के बावजूद द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की लगभग एक चौथाई सदी के दौरान देखा गया कि आर्थिक समृद्धि का यह संक्षिप्त युग कई उलझनों में फंसता जा रहा है। साथ ही इस दौरान बहुदेशीय कम्पनियों की आर्थिक, वित्तीय तथा तकनीकी क्षमताओं में जबरदस्त इजाफा हुआ। वित्तीय बाजार में इन बड़ी कम्पनियों द्वारा नियंत्रित संसाधनों की मात्रा बहुत बढ़ गई और साथ ही उनके निवेश के अच्छे अवसरों की भी। धनी देश इन संसाधनों के एक बड़े हिस्से का इस्तेमाल आपस में एक दूसरे के देश में ही करते हैं। परन्तु फिर भी उनके पास कुछ अतिरिक्त राशि बच जाती है जिसके लिए धनी देशों के अन्दर पर्याप्त मांग तथा अवसर नहीं होते हैं। गरीब मुल्कों को कर्ज देकर उन्हें अपनी औद्योगिक तथा सामरिक तकनीकें, साजो–सामान आदि बेचने का सिलसिला समृद्ध देशों द्वारा आगे बढ़ाया गया। विकास के कई सिद्धान्तों में इस तरह के संसाधनों के हस्तातरण को तीसरी दुनिया के विकास का अति महत्वपूर्ण स्तंभ बताया गया। 1950 तथा 1960 के दशक में इन गरीब देशों ने राज्याधारित योजनाओं के तहत काफी औद्योगिक बढ़त हासिल की। परन्तु वे इस बढ़त के आधार पर अपनी मूलभूत समस्याओं का समाधान नहीं कर पाए और न ही राजकीय क्षेत्र की बड़ी भूमिका के तहत उनकी धनी देशों की तकनीक तथा वित्त से अच्छे खासे मुनाफे देने की क्षमता लगातार बढ़ पाई। इसलिए 1980 के दशक में विदेशी कर्ज का पहाड़–सा बोझ कर्जदाताओं तथा कर्ज लेने वाले दोनों के लिए एक बड़ी मुसीबत बन गया।

इस स्थिति से उबरने के लिए धनी देशों ने जो नई तजवीज दुनिया भर पर थोपी उसी को वैश्वीकरण जैसे मखमली वस्त्र में लपेट कर पेश किया गया। इसका मुख्य तात्पर्य यह

इस तरह यथार्थ के धरातल पर हम भूमंडलीकरण का एक दूसरा चित्र देखते हैं। वह चित्र है एक विश्वव्यापी प्रभुत्व तथा दबदबे की बढ़त और उसका केन्द्रीकरण करने वाली व्यवस्था का निरन्तर मजबूत तथा व्यापक बनता रूप जिसमें सभी देशों के शीर्षस्थ लोग आपस में जुड़ते जा रहे हैं।

था कि कम औद्योगिक निर्धन देश पुराने कर्जे चुकाने में सक्षम हों और साथ–साथ वे विशाल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के वित्तीय संसाधनों को विस्तृत तथा लाभप्रद बाजार प्रदान करते रहें। निश्चित है कि यदि पुराने तरीके से अपेक्षाकृत रियायती ब्याज दर पर कर्ज दिए जाएं और उनके भुगतान की शर्तें आसान हों तो फिर से वही उभयक्षीय कर्ज–संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जो सन् 1980 के

दशक में अन्तर्राष्ट्रीय कर्ज संकट के रूप में उत्पन्न हुई थी। इसलिए नई व्यवस्था में एक ओर तो प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को अन्तर्राष्ट्रीय दीर्घकालिक वित्तीय प्रवाहों का मुख्य रूप बनाना था तथा दूसरी ओर करेन्सी तथा शेयर बाजारों में अल्पकालिक मुद्रा प्रवाहों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आने–जाने की पूरी खुली छूट देना जरूरी समझा गया। निश्चित रूप से खुले निर्बाध पूंजी तथा मौद्रिक प्रवाहों के साथ–साथ अन्य वस्तुओं तथा सेवाओं के आयात–निर्यात पर नियंत्रण अतार्किक लगेंगे वैसे भी वस्तुओं तथा सेवाओं के क्षेत्र में बिना पश्चिम की हूबहू नकल वाली आर्थिक बढ़त को स्वीकार किए मौद्रिक, वित्तीय तथा पूंजीगत प्रवाह बढ़ भी नहीं सकते। सक्षेप में वस्तुओं, सेवाओं तथा वित्त के क्षेत्र में सारी दुनिया के बाजारों को धनी देशों की कम्पनियों के लिए निर्बाध खोलना औद्योगिक धनी देशों की अपरिहार्य आवश्यकता बन गया और बना हुआ है।

इस आवश्यकता को आज की परिस्थितियों में तीसरी दुनिया से "स्वैच्छिक" रूप से मनवाना संभव हो गया है। इसका कारण है वहां पर आर्थिक विकास के पश्चिम द्वारा लादे गए माडल, जिसके चलते ही वहां एक गंभीर आर्थिक तथा वित्तीय संकट उत्पन्न हो गया था। वे अपने पुराने कर्ज चुकाने में असमर्थ थे। परन्तु चालू माडल को और आगे चलाते रहना इस तरह के विदेशी वित्तीय संसाधनों के बिना संभव नहीं था। उनकी आंतरिक स्थिति भी ऐसी हो गई थी कि राज्य आर्थिक और वित्तीय दृष्टि से पंगु हो गया था। इसलिए उसकी वैधता तथा प्रभावशीलता क्षीण हो चुकी थी। तत्कालीन शासकों को स्थानीय तथा आंतरिक संसाधनों और प्रयत्नों के आधार पर न तो आर्थिक बढ़त को जारी रखना संभव नजर आया और न ही लोगों को परम आवश्यक सेवाएं प्रदान करना सरकारी तथा स्थानीय साधनों के आधार पर मुमकिन नजर आया। इस स्थिति से निपटने के लिए जो नीतिगत उपाय किए गए वे आम जनता के दृष्टिकोण से काफी कड़वे थे। इसलिए उन पर वैश्वीकरण की चाशनी चढ़ाकर उन्हें जनता के गले उतारने का प्रयास किया गया। इस तरह स्पष्ट है कि वैश्वीकरण का वास्तविक अर्थ है औद्योगिक तथा धनी देशों के सभी प्रकार के संसाधनों को दुनिया के बाजारों, खासकर गरीब देशों के बाजारों में बेरोकटोक आने देना तथा उनके मुनाफे तथा लाभ को ऊंचे स्तर पर बरकरार रखने के लिए नीतिगत–ढांचागत परिवर्तन करना। स्पष्ट है कि वैश्वीकरण का एजेंडा औद्योगिक देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का एजेंडा है। निर्बाध मुक्त व्यापार हर आर्थिक क्षेत्र में फैलाने में गरीब देशों के सम्पन्न तबके को भी अपना लाभ नजर आया क्योंकि उनका आंतरिक बाजार सीमित था और सिकुड़ता जा रहा था। इसलिए बड़ी कम्पनियों तथा धनी देशों के साथ मिलकर वे एक नियंत्रण विहीन और

इस स्थिति से उबरने के लिए धनी देशों ने जो नई तजवीज दुनिया भर पर थोपी उसी को वैश्वीकरण जैसे मखमली वस्त्र में लपेट कर पेश किया गया। इसका मुख्य तात्पर्य यह था कि कम औद्योगिक निर्धन देश पुराने कर्जे चुकाने में सक्षम हों और साथ–साथ वे विशाल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के वित्तीय संसाधनों को विस्तृत तथा लाभप्रद बाजार प्रदान करते रहें।

खुले विश्व में बाजार की शक्तियों को खुली छूट देकर अपने लिए भी नए अवसरों तथा विकास की संभावनाएं पाने के अवसर देखने लगे। आम तौर पर वैश्वीकरण को नयी तकनीक क्रांति तथा वैज्ञानिक चमत्कारों से जोड़कर उसे एक सर्वसुलभ, सर्वाहितकारी या तटस्थ सम्भावना के रूप में पेश किया जाता है। इस सतही विचार के कारण विज्ञान तथा तकनीक द्वारा संभव बनाई गई सुख–सुविधाओं को सबके लिए समान रूप से तथा स्वतः स्फूर्त रूप से प्राप्त हो सकने वाली नियामत बताने की गंभीर भूल जान–बूझ कर एक सोची समझी रणनीति के तहत की जाती है।

वैश्वीकरण के वास्तविक रूप और उसके मुख्य अंगों पर विचार करने से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्रत्यक्ष रूप से वैश्वीकरण का कोई भी अंग गांवों और गरीबों की समस्याओं के समाधान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है। वैश्वीकरण के तहत किए गए नीतिगत परिवर्तन तथा आर्थिक संवृद्धि की रणनीति ग्रामीण विकास तथा गांव के लोगों की समग्र उन्नति के अब तक चले आ रहे प्रयासों की किसी भी खामी को न तो चिन्हित करते हैं और न ही उनमें सुधारों को कोई तजवीज करते हैं। गांव में शहरों के मुकाबले दो गुणा से ज्यादा गरीबी है। वहां आधारभूत सामाजिक तथा आर्थिक सेवाओं की बेहद कमी है। देश के अधिकांश बेरोजगार गांवों में रहते हैं। गांवों का व्यवसायिक ढांचा एकांगी है तथा उसमें विविधता तथा ऊंची उत्पादकता का अभाव है। स्पष्ट है वहां सामाजिक और आर्थिक असुरक्षा काफी व्यापक तथा गहरी जड़ें जमा चुकी है। देश की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या वाले गांवों की पिछली दो सदियों से चल रही उपेक्षा ज्यों की त्यों बनी हुई है, बल्कि कुछ अर्थों में तो और अधिक बिगड़ गई है। सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों स्तरों पर संवृद्धि की दर बढ़ाकर विकास तथा समानता प्राप्ति के सभी प्रयास नकारा साबित हो चुके हैं। गरीबी, बेरोजगारी, असमानता,पर्यावरण प्रदूषण तथा सामाजिक–राजनीतिक उपेक्षा आदि गंभीर ग्रामीण समस्याओं को ललकारने का कोई भी प्रयास वैश्वीकरण की नीति का अंग नहीं है। हां, यह जरूर बताया गया था कि नुकसान उठाने वाले सार्वजनिक उद्यमों का निजीकरण करके जो राशि प्राप्त की जाएगी उससे गांवों और गरीबों की भलाई के लिए चलाए जाने वाले कार्यक्रमों के लिए ज्यादा राशि आंबटित की जाएगी। जैसा कि भारत में वैश्वीकरण के सूत्रधार एक नेता ने अभी हाल में ही स्वीकार किया कि यह मकसद भी पूरा नहीं हो पाया है। भारत सहित अनेक देशों के सार्वजनिक व्यय के आबंटन के आंकड़े साफ दिखाते हैं कि गरीबों के हित के कार्यक्रमों के लिए आबंटित राशि अभी भी अपर्याप्त बनी हुई है।

वैसे देखा जाए तो गांव की गरीबी का सवाल केवल सरकारी कार्यक्रमों तथा केन्द्रित योजनाओं के जरिये हल होने वाला मसला नहीं है। भारत में कई राजनीतिक दल वादा करते रहते हैं कि गांव तथा कृषि के लिए वे इन क्षेत्रों की जनसंख्या के अनुसार सार्वजनिक वित्तीय संसाधनों का आबंटन करेंगें। परन्तु कोई भी दल या सरकार इस वादे को निभा

नहीं पाए हैं। गांवों की बदहाली की जड़ें हमारी व्यवस्था के मूल स्तम्भों तक पहुंचती हैं। वैश्वीकरण की नीति देसी तथा विदेशी पूंजी की भूमिका को बढ़ाती है, उनके लिए ज्यादा आसान व लाभप्रद शर्तें तथा परिस्थितियां उत्पन्न करती है और उनको

इस तरह स्पष्ट है कि वैश्वीकरण का वास्तविक अर्थ है औद्योगिक तथा धनी देशों के सभी प्रकार के संसाधनों को दुनिया के बाजारों, खासकर गरीब देशों के बाजारों में बेरोकटोक आने देना तथा उनके मुनाफे तथा लाभ को ऊंचे स्तर पर बरकरार रखने के लिए नीतिगत–ढांचागत परिवर्तन करना।

आगे बढ़ने के लिए अधिकाधिक सुविधाएं तथा अवसर प्रदान करती है। इसके द्वारा सम्पत्ति, आय तथा सभी अन्य प्रकार की सामाजिक शक्तियों का केन्द्रीकरण बढ़ता है। यहां तक कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण की नीति के तहत गांव अथवा गरीबों को उनके सारे लोकतांत्रिक अधिकारों, खासकर विकास तथा आजीविका सुरक्षा के अधिकार, अन्य तबकों के समकक्ष अथवा विशेष रूप से प्रदान करने की कोई व्यवस्था, नीति एवं कार्यक्रमों के स्तर पर नहीं की गई है। जाहिर है इन उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयासों का सवाल ही नहीं उठता।

हमारी नीतियों को कुछ स्पष्ट विकल्पों के बीच चुनाव करना पड़ता है। मसलन हमारे सामने विकल्प हैः एक तरफ उत्पादन तथा निवेश बनाम रोजगार तथा समानता, दूसरी ओर व्यापक भागीदारी बनाम सीमित केन्द्रीकरण, तीसरी ओर कृषि तथा ग्रामीण विकास बनाम शहरी तथा पूंजी–प्रधान उद्योगों का विकास, चौथे, गांवों तथा आम आदमी के लिए शिक्षा, चिकित्सा तथा सफाई, अच्छे स्वास्थ्य, यातायात, बिजली, पानी, आदि की व्यवस्था अथवा इन्हीं सब सुविधाओं का शहरों तथा सम्पन्न लोगों के हित में केन्द्रीकरण। भारत जैसे विकास के सवाल से जूझते देशों के लिए इन विकल्पों में से आम आदमी के हित के विकल्पों का चुनाव हमारे जमाने की सबसे बड़ी चुनौती है। आजकल प्रचलित मुख्य धारा की सोच में इस तरह के विकल्पों को पेश तक नहीं किया जाता है। वहां तो सवाल केवल बड़ी कम्पनियों तथा उनसे संबंधित उद्योग धन्धों, आधारभूत सेवाओं तथा उनके विदेशी आर्थिक रिश्तों की बात को ही सोच–विचार का केन्द्र बिन्दु बनाया जाता है। वैश्वीकरण की नीति इस तरह के जन–विमुख विकल्पों के एक ऐसे संग्रह और संघटकों का नाम है जहां सम्पन्न लोगों के रास्ते में आने वाली रुकावटों को हटाने के प्रयासों को सर्वोपरि दर्जा दिया गया है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि 1990 के दशक के अंत में ग्रामीण भारत की सभी समस्याएं और ज्यादा विकराल हो गई हैं।

वैश्वीकरण की नीतियों को एक ठोस कानूनी तथा संगठनात्मक रूप देने का प्रयास विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू. टी.ओ.) के रूप में प्रकट हुआ है। आने वाले कुछ सालों में भारत के गांवों में किसानों और कारीगरों द्वारा उत्पादित हर वस्तु के विकल्प के आयात की खुली अनुमति दे दी जाएगी। हजारों वस्तुओं का आयात अब तक खोला जा चुका है। इसी तरह विदेशी पूंजी को भारतीय अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में प्रवेश करने की न केवल इजाजत दी जा रही है बल्कि उनके स्वागत में तोरण द्वार सजाए जा रहे हैं। भारतीय परम्परागत उत्पादों और तकनीकों पर विदेशी कम्पनियां पेटेन्ट के अधिकार हथिया रही हैं। भारतीय किसानों को बीजों, खादों और कीटनाशकों के लिए विदेशी कम्पनियों का मोहताज बनाया जा रहा है। बड़े स्तर पर व्याप्त खाद्य असुरक्षा को नजरअंदाज करते हुए हमारी सीमित कृषि योग्य भूमि को निर्यात योग्य फसलों जैसे फल–फूल तथा वाणिज्यिक फसलों के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है। बड़ी–बड़ी कम्पनियों को हजारों एकड़ जमीन कन्ट्रेक्ट फार्मिंग के नाम पर उपलब्ध कराई जा रही है। भूमि सुधार क्यों असफल हुए और उन्हें लागू करने के लिए किस तरह की नई तजवीजों की जरूरत है आदि सवालों से आंखें चुरा ली गई हैं। ग्रामीण उद्योग बंद होते जा रहे हैं। उनकी मांग बढ़ने के आधार क्षीण हो रहे हैं। सन् 1990–98 तक ऐसे छोटे कामकाजों की संख्या घटी है और आर्थिक जनगणना के आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनमें रोजगार बढ़त की दर भी घटी है। इस तरह खुली अर्थव्यवस्था का सीधा–साधा अर्थ गांवों तथा गरीबों की आजीविका पर खुला हमला है। इन नीतियों के समर्थक कोई ऐसा आकलन पेश नहीं कर पाए हैं कि गांवों की स्थिति में सुधार हो रहा है।

सीमित संसाधनों के आबंटन में उचित हिस्सा नहीं प्राप्त करने वाले तबके तथा परिवार आर्थिक गतिविधियों के हाशिए पर आते जा रहे हैं। उनकी राजनीतिक, सामाजिक शक्ति घट रही है। ये सब नतीजे निजीकरण, बाजारीकरण, तथा मुक्त बाजार नीति के तहत हासिल हो रहे हैं। बाजार में ग्रामीणों की घटती भागीदारी से व्यवस्था के स्थायित्व को चुनौती मिलती है। इसलिए गरीबी निराकरण के कुछ छिट–पुट तथा ज्यादा नजर आने वाले प्रयास राजनीतिक–आर्थिक सभी दृष्टियों से जरूरी हो जाते हैं। भारत जैसे देशों के इस तरह के कार्यक्रमों को वैश्वीकरण के

प्रत्यक्ष रूप से वैश्वीकरण का कोई भी अंग गांवों और गरीबों की समस्याओं के समाधान के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है। वैश्वीकरण के तहत किए गए नीतिगत परिवर्तन तथा आर्थिक संवृद्धि की रणनीति ग्रामीण विकास तथा गांव के लोगों की समग्र उन्नति के अब तक चले आ रहे प्रयासों की किसी भी खामी को न तो चिन्हित करते हैं और न ही उनमें सुधारों को कोई तजवीज करते हैं।

कर्णधार अपना समर्थन विश्व बैंक आदि संस्थाओं के जरिये देते रहते हैं। जिस तरह गरीबों और भिखारियों का अस्तित्व दान–दाताओं की महानता और उदारता का ढोल पीटने के लिए आवश्यक शर्त होता है, उसी तरह गरीबों की विशाल संख्या का लगातार अस्तित्व गरीबी–निवारण कार्यक्रम चलाकर राजनीतिक वैधता तथा वोट प्राप्त करने की जरूरी शर्तें हैं। यही नहीं, अब तो ये कार्यक्रम व्यावसायिक मुनाफे के सौदे भी

(शेष पृष्ठ 36 पर)

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की समस्या

कृपा शंकर*

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से ही देश में गरीबी दूर करने के प्रयास शुरू हो गए थे। पहले तो यह सोचा गया कि जैसे–जैसे देश का विकास होगा, गरीबी अपने आप दूर होती जाएगी। परन्तु जब इसमें सफलता नहीं दिखाई दी तो गरीबी पर सीधा प्रहार करने के लिए गरीबों को दिहाड़ी रोजगार देने के लिए और स्वरोजगार के लिए ऋण/अनुदान की योजनाएं शुरू की गईं। परन्तु इनसे भी गरीबों की दशा में सुधार नहीं हुआ है। लेखक की मान्यता है कि जब तक ग्रामीण इलाकों में भूमि का सही वितरण नहीं होता गरीबों की हालत में सुधार संभव नहीं है। इसके लिए लेखक का सुझाव है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जिन लोगों के पास ज्यादा जमीन है उनसे सरकार को जमीन खरीदकर भूमिहीनों में बांटनी चाहिए तभी ग्रामीण भारत की तस्वीर बदलेगी। जापान में काफी पहले ऐसा कर लिया गया था।

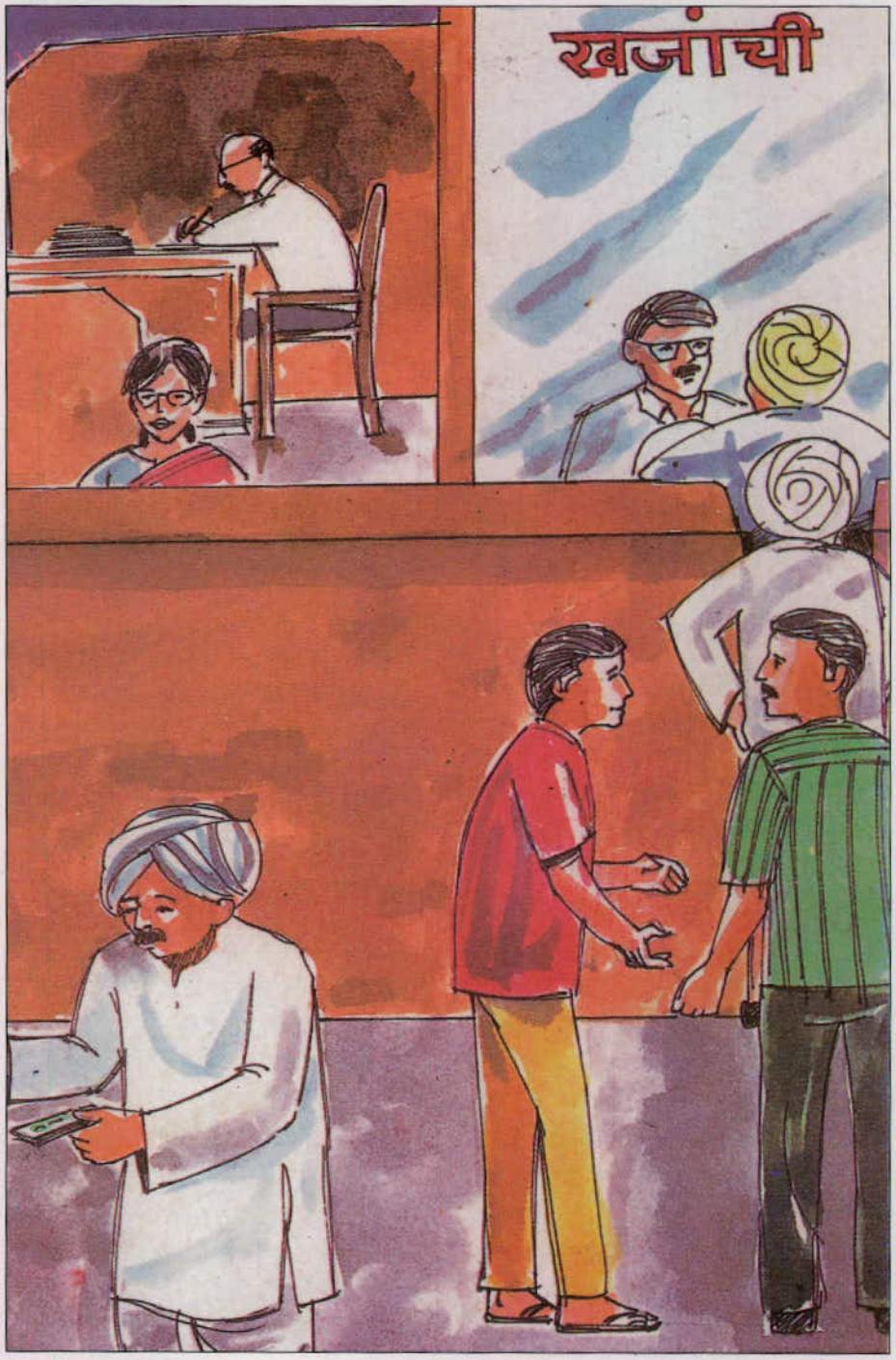

* निदेशक, आर्थिक अनुसंधान केन्द्र, इलाहाबाद

स्वातंत्र्योत्तर काल में देश में प्रगति हुई है, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता परन्तु प्रगति की गति धीमी रही है और विकास का लाभ कुल मिलाकर उन्हीं वर्गों को हुआ है जो पहले से ही सम्पत्तिशाली और अपेक्षाकृत धनवान थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि नीचे के वर्गों तक कोई लाभ नहीं पहुंचा। थोड़ा–बहुत वे भी लाभान्वित हुए परन्तु धनी वर्गों की अपेक्षा उनका अंश बहुत कम है।

दूसरी बात यह है कि विकास का जो मार्ग अपनाया गया उससे जो भी विकास हुआ, आगे की सम्भावना क्षीण होती दृष्टिगोचर हो रही है। उदाहरण के लिए खाद्यान्नों के उत्पादन की दर अभी तक जनसंख्या की वृद्धि की दर से अधिक रही है परन्तु पिछले दो वर्षों से यह दर जनसंख्या की वृद्धि की दर से कम हो गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर खाद्यान्नों के उत्पादन में तेजी से वृद्धि नहीं होती तो आने वाले समय में प्रति–व्यक्ति खाद्यान्नों की उपलब्धता कम हो जाएगी।

कृषि उत्पादन में, विशेषकर खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि के कारण ही यद्यपि पिछले वर्षों में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई लेकिन जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में अवश्य कमी हुई। उदाहरण के लिए 1973–74 में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों की संख्या 32.13 करोड़ थी तथा 54.9 प्रतिशत देशवासी इस रेखा के नीचे थे। वर्ष 1993–94 में यह घटकर 36 प्रतिशत रह गई लेकिन गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या 32.04 करोड़ बनी रही। वास्तविकता यह है कि जहां 1990–91 में 29 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे थे, 1998 में उनकी संख्या 40.6 करोड़ हो गई (देखिए, एस.पी. गुहा : ट्रिकिल डाउन थियोरी रीविजिटेड, 1999)। अब जब खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि नहीं हो रही है, तब न केवल गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होगी, वरन् प्रतिशत के रूप में जो कमी हुई थी वह आगे सम्भव नहीं हो सकेगी।

स्वतन्त्र भारत में सबसे बड़ी चुनौती गरीबी दूर करने की रही है लेकिन इस प्रश्न को गम्भीरता से नहीं लिया गया। प्रारम्भ में तो यह सोच बनी कि विकास के साथ गरीबी भी अपने आप समाप्त हो जाएगी और जब ऐसा नहीं हुआ तो गरीबी पर सीधा प्रहार करने की रणनीति बनी, जिसके अन्तर्गत गरीबों को पशु पालन, दुकान खोलने आदि के लिए ऋण दिया जाने लगा परन्तु ऋण पर 14–15 प्रतिशत ब्याज भी लिया जाता था। प्रारम्भ में जब वसूली नहीं हुई तो लोग इसकी तरफ आकर्षित हुए क्योंकि गरीबों को, भ्रष्टाचार के बावजूद, एकमुश्त रुपया मिल जाता था। किश्त की समय से अदायगी न करने के कारण ब्याज मूलधन में जोड़ दिया जाता है, ब्याज भी चक्रवृद्धि ब्याज हो जाता है और देय राशि मूलधन से काफी ज्यादा हो जाती है। बैंकों के पास, जो लाभार्थी को आई.आर. डी.पी. के अन्तर्गत ऋण देते हैं, वसूली करने के लिए कोई साधन नहीं रहता, अतः वे वसूली का कार्य सरकारी राजस्व विभाग को सौंप देते हैं जो वसूली के लिए अलग से खर्च जोड़ देते हैं। वसूली के लिए कितने मामले बैंक राजस्व विभाग को प्रतिवर्ष सौंपते हैं, इसका कोई आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। ऐसा कहा गया है कि लगभग 5 करोड़ ग्रामीण परिवार इस योजना के अन्तर्गत लाभान्वित हुए हैं। परन्तु ये लाभार्थी गरीबी रेखा के ऊपर नहीं जा सके हैं अन्यथा ग्रामीण अंचल में 30 करोड़ से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे न होते।

गरीबी निवारण के कार्यक्रम में इसको बिलकुल नजरअन्दाज कर दिया गया है कि किस प्रकार गरीबों को कर्ज की कोई वैकल्पिक व्यवस्था की जाए। आज भी उन्हें महाजनों/भूस्वामियों पर आश्रित रहना पड़ता है।

गरीबी निवारण में जवाहर रोजगार योजना को भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है क्योंकि इस योजना के अन्तर्गत सीधे ग्राम पंचायत को सड़क निर्माण आदि कार्यों के लिए अनुदान मिलता है। इस योजना पर लगभग 2,000 करोड़ रुपये वार्षिक व्यय होता है यद्यपि अब यह धनराशि घटाकर 1,500 करोड़ रुपये कर दी गई है। इस योजना की सबसे बड़ी कमी यह रही है कि ग्रामवासियों को यह पता नहीं रहता कि किस पंचायत को किस कार्य के लिए कितनी धनराशि मिली है। अतः ग्राम प्रधान और ग्राम पंचायत अधिकारी आम तौर से मिलकर धन का दुरुपयोग करते हैं। केन्द्रीय योजना आयोग ने अपने सर्वेक्षण में यह पाया कि ग्राम के कुछ ही गरीब, वर्ष में मात्र 16 दिन इस योजना के तहत कार्य पा सके।

ग्रामीण अंचल में बेरोजगारी और गरीबी दूर करने के लिए और भी बहुत–सी योजनाएं चल रही हैं जिनमें सुनिश्चित रोजगार योजना भी महत्वपूर्ण है जिसके अन्तर्गत बेरोजगार व्यक्तियों को कम से कम 100 दिन काम देने का प्रावधान है। महिलाओं और बच्चों के विकास के लिए 'डवाकरा' का कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत महिलाओं को स्वरोजगार प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता रहा है जिस पर प्रतिवर्ष 1,500 करोड़ रुपये व्यय होते हैं। इंदिरा आवास योजना पर भी इतनी ही धनराशि व्यय होती है जिसके अन्तर्गत गरीब व्यक्ति को एक कमरे का पक्का मकान बनाने के लिए अब 20,000 रुपये की सहायता दी जाती है। सबसे गरीब व्यक्तियों को रोजगार का अवसर मिलना चाहिए। केवल कमरा पक्का होने से उनका कल्याण नहीं होगा। लेखक ने विंध्य पर्वत श्रृंखला में बसे आदिवासी ग्रामों के सर्वेक्षण में यह पाया कि भ्रष्ट कर्मचारी इन योजनाओं द्वारा लाभ उठा रहे हैं। सहायता राशि का 20 प्रतिशत आम तौर से काट लिया जाता है। गरीब आदमी सोचता है जो भी मिल रहा है ले लिया जाए, क्योंकि उसकी बहुत सी जरूरतें रहती हैं। बहुत से मामलों में यह पाया गया कि पुराने कर्जे इस धनराशि से वापस किए गए। दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी यह धन लगा दिया जाता है। कभी–कभी विवाह में भी यह धन लगा दिया जाता है। ऐसा कम ही होता है कि जिस कार्य के लिए कर्ज/सहायता मिलती हो उस कार्य में वास्तविक रूप से व्यय हो। परन्तु एक मायने में यह दुरुपयोग नहीं है क्योंकि निर्धन व्यक्ति को इनके लिए महाजन से कर्ज लेना पड़ता। अध्ययन क्षेत्र में महाजन से कर्ज पर ब्याज की दर 60 प्रतिशत से लेकर 120 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। यह इस बात पर

वृक्षारोपण से लाखों बेरोजगारों को रोजगार दिया जा सकता है

निर्भर है कि कर्ज लेने वाले को रुपयों की कितनी सख्त जरूरत है।

यहां इस बात को रेखांकित करने की आवश्यकता है कि गांव में सबसे गरीब व्यक्ति खेत पर मजदूरी करके जीवन–यापन करता है जहां वर्ष में मुश्किल से 5–6 महीने ही काम उपलब्ध रहता है। जब काम नहीं रहता तो कर्ज लेना पड़ता है। यदि गल्ले के रूप में भी कर्ज लिया जाता है तो उसका सवाया लौटाना पड़ता है। गरीबी निवारण के कार्यक्रम में इसको बिलकुल नजरअन्दाज कर दिया गया है कि किस प्रकार गरीबों को कर्ज की कोई वैकल्पिक व्यवस्था की जाए। आज भी उन्हें महाजनों/भू–स्वामियों पर आश्रित रहना पड़ता है।

यहां यह भी स्मरण रहे कि बंधुआ मजदूरी की प्रथा वास्तव में कर्ज प्राप्त करने के लिए गरीब आदमी का विकल्प है क्योंकि कर्ज प्राप्त करने के लिए कोई प्रतिभूति न होने के कारण उनके सामने यही विकल्प है कि वह भू–स्वामी को अपने को गिरवी रख दे, तब तक के लिए जब तक कि वह कर्ज वापस न कर दे। भारत सरकार यह समझती है कि "बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1976" द्वारा उसने सभी बंधुआ मजदूरों का कर्ज माफ कर दिया है और ऐसे सभी बंधुआ मजदूर स्वतन्त्र हो गए हैं परन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। बहुत पिछड़े क्षेत्रों में जहां खेती भी पिछड़ी है और खेती के बाहर रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे हैं, असंख्य लोग बंधुआ मजदूर बने हुए हैं। बंधुआ मजदूर बन जाने से यह लाभ है कि जो कर्ज उन्हें विवाह आदि के अवसर पर लेना अनिवार्य हो गया था उस पर ब्याज नहीं लगेगा। सर्वेक्षण के दौरान यह पाया गया कि कुछ बंधुआ मजदूर पूरा कर्ज का पैसा वापस कर मुक्त हो गए क्योंकि विकास कार्यों में घर के किसी प्राणी को काम मिल गया और उसने कर्ज वापस करा दिया। परन्तु बंधुआ उन्मूलन अधिनियम के तहत एक भी ऐसा मजदूर मुक्त नहीं हो पाया। कानून में कर्ज तो अवश्य माफ कर दिया गया है परन्तु क्या यह सम्भव है कि गांव में सबसे गरीब आदमी सबसे बलशाली व्यक्ति से, जिस पर वह अपनी जीविका के लिए आश्रित है, यह कह सकने का साहस कर सके कि वह कर्ज वापस नहीं करेगा क्योंकि भारत सरकार ने कर्ज माफ कर दिया है। पहली बात तो यह है कि उसे इस कानून का पता ही नहीं है। दूसरी बात यह कि जिस दिन वह ऐसा कहेगा उसकी टांग तोड़ दी जाएगी। फिर उसे किसी न किसी भूस्वामी के यहां काम करना ही पड़ेगा क्योंकि जीविका के लिए कोई अन्य उपाय नहीं है। यह हमारे देश की नौकरशाही की बलिहारी है कि उसने एक कलम से इस सारी समस्या को कागज पर समाप्त कर दिया। उनके हिसाब से अब कोई गरीब आदमी किसी का बंधुआ बनकर कर्ज नहीं लेगा क्योंकि यह गैरकानूनी है। इसका एक प्रभाव यह अवश्य पड़ा है कि गरीबों को अब कोई आसानी से कर्ज नहीं देता।

स्वातंत्र्योत्तर काल में ऋण देने वाली वित्तीय संस्थाओं का व्यापक विस्तार हुआ है। इन संस्थाओं द्वारा प्रतिवर्ष अरबों रुपया ऋण दिया जाता है और करोड़ों रुपया माफ कर दिया जाता है। राष्ट्रीयकृत बैंकों ने 45,000 करोड़

रुपये का ऐसा ऋण दिया है जो वसूल नहीं हो सकेगा और जिसे अन्ततोगत्वा माफ कर दिया जाएगा। राष्ट्रीयकृत बैंक प्रतिवर्ष 3,00,000 करोड़ रुपये से अधिक ऋण बांटते हैं परन्तु देश की गरीब जनता को इससे कुछ लेना–देना नहीं है। उन्हें तो आजीवन महाजनी कर्ज में दबे रहना है।

गरीबी पर सीधा प्रहार के तहत जो योजनाएं चलाई गईं, उन पर पहली बात तो यह कि बहुत कम धनराशि का प्रावधान किया जाता है। अकेले केन्द्रीय सरकार का वार्षिक बजट 3,40,000 करोड़ रुपये का है परन्तु सभी प्रकार की ग्रामीण विकास योजनाओं पर, जिसमें पेयजल व्यवस्था आदि शामिल है, कुल व्यय 10,000 करोड़ रुपये से कम है। अर्थात् कुल बजट का 3 प्रतिशत ही इन समस्त योजनाओं पर व्यय होता है। दूसरी बात यह है कि ग्रामीण जनता की इन योजनाओं को चलाने में कोई भागीदारी नहीं है। जिस नौकरशाही को इन कार्यों का सम्पादन करना है उन पर किसी की जवाबदेही नहीं है। यही कारण है कि जनता उदासीन रहती है और नीचे के स्तर पर भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। नौकरशाही द्वारा ग्रामीण विकास के असफल प्रयोग के बाद अब सरकार स्वयंसेवी संस्थाओं को जोड़ रही है परन्तु वास्तविकता यह है कि जब तक समस्त ग्रामीण जनता को स्थानीय विकास के लिए अधिकार और वित्तीय साधन नहीं दिए जाते, विकास कार्य बाधित रहेगा। संविधान में 73वां तथा 74वां संशोधन करके इसके लिए मार्ग प्रशस्त हुआ है परन्तु निहित स्वार्थों का इतना वर्चस्व है कि इस दिशा में किसी राज्य में कोई असरदार कदम नहीं उठाया जा रहा है।

यह सच है कि अगर ग्राम समुदाय का पूर्णरूप से सशक्तिकरण हो तो विकास कार्यों में एक गुणात्मक परिवर्तन आएगा। विकास कार्यों में गांवों की विशाल जनशक्ति को लगाया जा सकेगा और जो भी प्राकृतिक संसाधन हैं उनका समुचित उपयोग हो सकेगा, उनका दोहन रुक सकेगा और इन संसाधनों की श्रीवृद्धि और सम्वर्धन होगा। परन्तु क्या इतने से ही गरीबी दूर हो जाएगी? गरीबी दूर करने की दिशा में यह परम आवश्यक कदम है परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है।

जो ढांचा हमें अंग्रेजों से विरासत में मिला है वह भूमि स्वामित्व की विकराल विषमता पर आधारित है। अंग्रेजों ने जमींदारी प्रथा लागू की, पंचायतों को तोड़ा और घरेलू उद्योग धन्धों को नष्ट किया। गांवों में आधे लोग खेती करते थे और आधे लोग कपड़ा बुनने तथा अन्य धन्धों में लगे रहते थे। घरेलू उद्योग धन्धों के नष्ट होने के फलस्वरूप गांवों में पहली बार ऐसे लोगों का एक समूह उत्पन्न हुआ, जो जीविकाविहीन था तथा दूसरे के यहां मजदूरी ही उनकी जीविका का साधन

यहां यह भी स्मरण रहे कि बंधुआ मजदूरी की प्रथा वास्तव में कर्ज प्राप्त करने के लिए गरीब आदमी का विकल्प है क्योंकि कर्ज प्राप्त करने के लिए कोई प्रतिभूति न होने के कारण उनके सामने यही विकल्प है कि वह भू–स्वामी को अपने को गिरवी रख दे, तब तक के लिए जब तक कि वह कर्ज वापस न कर दे।

था। खेती में बराबर काम नहीं रहता इसलिए भूमिहीनों का समुदाय घोर गरीबी में दिन बिताता था। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवादी हितों के लिए कृषि पदार्थों का मूल्य बहुत गिरा दिया था ताकि उन्हें यह सामग्री सस्ते दाम पर मिल सके परन्तु इसका यह परिणाम हुआ कि बहुत से किसान लगान तक नहीं दे पाते थे और उन्हें प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में भूमि से बेदखल कर दिया जाता था। ऐसे लोग भी भूमिहीन मजदूरों की कतार में शामिल होने लगे। किसानों को खर्च चलाने के लिए महाजनों से ऋण लेना पड़ता था और चूंकि वे ऋण वापस करने में असमर्थ होते थे, कालान्तर में उन्हें अपनी भूमि महाजनों के हाथ बेचनी पड़ती थी।

स्वतन्त्र भारत में यह सबसे बड़ी चुनौती थी कि इस विशाल भूमिहीन तथा अर्द्ध–भूमिहीन समुदाय को कहां पर किस प्रकार के काम में लगाया जाए। गांधी जी की सोच अपनी जगह पर सही थी कि गांव में ही कपड़ा बनाने के कार्य को पुनः प्रारम्भ किया जाए। जिनके पास खेत नहीं है या कम खेत है वे खाली समय में चरखा चलाएं तथा अन्य ग्रामीण उद्योगों में लगे रहें। इस प्रकार इस विशाल जनशक्ति के श्रम का सदुपयोग हो सकेगा जो देश की प्रगति के लिए आवश्यक है।

देश के शासक वर्ग ने गांधी जी की बात को अव्यावहारिक समझ कर उसे तिलान्जलि दे दी। यहां तक तो बात ठीक थी, परन्तु इस विशाल समुदाय का, जो या तो बेरोजगार है या अर्द्ध–बेरोजगार है, उसका क्या होगा? इसकी कोई चिन्ता नहीं की गई। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को तेज़ करके इस पूरे समुदाय को खेती के बाहर उद्योग धन्धों में लगाया जा सकता है। ऐसी धारणा कदाचित उनकी नहीं थी।

अपने देश में भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व की अवधारणा जिसे अंग्रेजों ने थोपा, कभी नहीं थी। खेती यद्यपि व्यक्तिगत रूप से होती थी लेकिन भूमि को व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं माना जाता था। भूमि पूरे समुदाय की हुआ करती थी। राजा का अंश देने के बाद गांव में जो कुछ भी बचता उस पर सभी का अधिकार होता था। कोई व्यक्ति भूमिहीन मजदूर नहीं होता था और सभी के पास जीविकोपार्जन का साधन होता था।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद देश के नवनिर्माण की यह पहली शर्त थी कि गांवों में समुदाय को पुनः प्रतिष्ठित किया जाए और बदले हुए परिवेश में गांव में बसने वाले सभी व्यक्तियों की जीविका सुनिश्चित की जाए। औद्योगिक विकास के परिप्रेक्ष्य में जो लोग गांव के बाहर स्थायी जीविका प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं उन्हें गांव में भूमि रखने का मोह छोड़ना पड़ेगा। परन्तु जो लोग खेती पर आश्रित हैं उनके पास कुछ न कुछ भूमि अवश्य होनी चाहिए ताकि उनके पास जीविका का एक स्थायी साधन हो और इसके लिए वे किसी अन्य व्यक्ति पर आश्रित न हों। एक स्वस्थ ग्रामीण समाज का यही आधार हो सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिनके पास ज्यादा भूमि है उन्हें इस बात के लिए मजबूर किया जाए कि अपनी भूमि के एक भाग को वे छोड़ दें जो भूमिहीनों को दी जा सके।

ग्रामीण अंचल में जब सरकार सड़क बनवाने या नहर निकालने या अन्य काम के लिए भूमि का अधिग्रहण करती है तो कोई इसका विरोध नहीं कर सकता क्योंकि लोगों को बाजार दर से अधिगृहीत भूमि का मुआवजा मिलता है चाहे वह भूमि किसी के लिए कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हो। यही सिद्धान्त भूमि वितरण में भी यदि लागू किया जाता तो पुनर्वितरण के लिए सरकार जितनी चाहती भूमि का अधिग्रहण कर सकती थी। कोई उसका विरोध नहीं कर पाता क्योंकि उन्हें पूरा मुआवजा मिलता।

कम्युनिस्ट देशों के अतिरिक्त जापान में द्वितीय महायुद्ध के बाद सबसे कारगर भूमि का पुनर्वितरण हुआ। जो लोग गांवों में नहीं रहते थे या ऐसे भू–स्वामी थे जो गांव में रहते थे परन्तु खेती नहीं करते थे और खेती से उनका कोई सरोकार नहीं था उनको केवल 2.5 एकड़ भूमि ही रखने का अधिकार दिया गया। इसके ऊपर की भूमि को सरकार ने खरीद लिया। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि भूमि बाजार भाव से नहीं खरीदी गई, बाजार भाव से कम दामों में उनकी भूमि खरीदी गई। भूमि की हदबन्दी भी 7.5 एकड़ निश्चित की गई, केवल होकैड़ों में यह सीमा 30 एकड़ थी जहां भूमि अच्छी नहीं थी। इसके ऊपर की भूमि को सरकार ने खरीद कर गरीब किसानों में बांटा। इस प्रकार थोड़ी ही अवधि में 50 लाख एकड़ भूमि गरीब किसानों में वितरित हो गई। भूमि सुधार के पहले केवल 54 प्रतिशत ऐसी भूमि थी जिसे जोतने वाले उस भूमि के स्वामी थे, सुधार के बाद ऐसी भूमि का प्रतिशत 92 हो गया। (देखिए, लैडेजिन्सकी : ऐग्रेरियन रिफार्म ऐज अनफिनिश्ड बिजिनेस, 1977)।

अपने देश में भूमि सुधार के क्षेत्र में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ जो कि एक अति महत्वपूर्ण सुधार था, जिससे किसानों को जमींदारों के उत्पीड़न से मुक्ति मिली परन्तु इस सुधार से भूमि के स्वामित्व में कोई परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि इसके अन्तर्गत भूमि के पुनर्वितरण का कोई प्रावधान नहीं था। जमींदारों की लाखों एकड़ सीर और कुदकाश्त की भूमि जिस पर वे स्वयं कभी खेती नहीं करते थे उन्हीं के अधिकार में बनी रही। साठ के दशक के प्रारम्भ में हदबन्दी का कानून बहुत से राज्यों में लागू हुआ परन्तु हदबन्दी की सीमा इतनी अधिक थी और छूट इतनी अधिक थी कि हदबन्दी से कुल लगभग 30 लाख हेक्टेयर भूमि निकली। वास्तविक बोए गए कुल क्षेत्र का यह मात्र 2 प्रतिशत है। इसका भी महत्व होता परन्तु हदबन्दी कानून में इस बात का प्रावधान है कि भूस्वामी अपनी मर्जी की भूमि हदबन्दी के अन्तर्गत देगा इस कारण भूस्वामियों ने सब से खराब जमीन जो खेती के योग्य नहीं हुआ करती थी, उसे ही हदबन्दी में दिया और ज्यादातर मामलों में किसी न किसी बात को लेकर अदालत की शरण में चले गए।

औद्योगिक विकास के परिप्रेक्ष्य में जो लोग गांव के बाहर स्थायी जीविका प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं उन्हें गांव में भूमि रखने का मोह छोड़ना पड़ेगा। परन्तु जो लोग खेती पर आश्रित हैं उनके पास कुछ न कुछ भूमि अवश्य होनी चाहिए ताकि उनके पास जीविका का एक स्थायी साधन हो और इसके लिए वे किसी अन्य व्यक्ति पर आश्रित न हों।

1976 के बाद ग्राम समाज की बंजर भूमि का भी भूमिहीनों में पट्टा हुआ और लोग लाभान्वित हुए परन्तु ग्राम समाज की अच्छी भूमि पर बड़े लोगों ने पहले से ही कब्जा कर लिया था। जो रद्दी जमीन थी वही बंट सकी। भूमि–वितरण का काम लेखपाल के हाथ में होता है। अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षण में यह पाया गया कि औसतन एक तिहाई भूमि ही सही पात्रों को मिली। ऐसे तमाम मामले थे, जहां पैसा देकर अपात्रों ने भूमि आवंटित करा ली। एक ऐसा भी मामला प्रकाश में आया जहां बडोही आदिवासी ग्राम में लेखपाल ने कई फर्जी पट्टे इकट्ठे करके जो खेत एक दूसरे से लगे हुए थे उस पर अपना फार्म बनाकर खेती करना शुरू कर दिया। फार्म 72 बीघे अर्थात् 18 हेक्टेयर का है जहां पम्पिंग सेट आदि लगा हुआ है।

भूमि वितरण की प्रक्रिया से भूमि के स्वामित्व में नहीं के बराबर अन्तर पड़ा है। उसमें घोर विषमता आज भी कायम है। 1992 के नेशनल सैम्पुल सर्वे के अनुसार 11 प्रतिशत ग्रामीण घराने पूर्णरूप से भूमिहीन हैं। इसके बाद 46 प्रतिशत घरानों के पास 0.5 हेक्टेयर से कम भूमि है जो खेतिहर मजदूर ही कहे जाएंगे। इस 46 प्रतिशत के पास कुल भूमि का मात्र 6 प्रतिशत है इस प्रकार 57 प्रतिशत ग्रामीण परिवार या तो पूर्ण रूप से भूमिहीन हैं या उनके पास आधे हेक्टेयर से कम भूमि है। इसके विपरीत चोटी के 0.6 प्रतिशत परिवारों के पास कुल भूमि का 11 प्रतिशत है। ऊपर के एक प्रतिशत के पास कुल भूमि का 16 प्रतिशत है जो कि नीचे के 70 प्रतिशत लोगों की भूमि से अधिक है।

यदि ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि की ऐसी असमानता बनी रहेगी – जो मूल रूप से औपनिवेशिक ढांचे का मेरुदण्ड रहा है – तो ऐसी स्थिति में जो भी विकास होगा उसका न केवल लाभ बड़े भूस्वामियों को ही मिलेगा, वरन् देश के औद्योगिकीकरण के लिए कोई आधार नहीं बन सकेगा। विशाल जनता के पास गरीबी के कारण क्रय–शक्ति न होने के फलस्वरूप कारखानों के सामने बाजार का प्रश्न बना रहेगा। आज भी जो उद्योग लगे हैं केवल 67 प्रतिशत क्षमता पर काम कर रहे हैं।

गरीबी निवारण के लिए अपने देश की स्थिति में बहुत व्यापक पैमाने पर भूमि का पुनर्वितरण अनिवार्य है। प्रतिवर्ष खेत मजदूरों की संख्या में 20 लाख की वृद्धि हो रही है। सीमान्त कृषकों की संख्या में भी भारी वृद्धि हो रही है। सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार घट रहा है। *इकानामिक सर्वे 1999–2000* के अनुसार इस क्षेत्र में 1997 में 195.6 लाख लोग सेवानियोजित थे जो 1998 में घटकर 194.2 लाख हो गए। इसी अवधि में संगठित निजी क्षेत्र में सेवानियोजित व्यक्तियों की संख्या 86.9 लाख से बढ़कर 87.5 लाख अर्थात् 60 हजार लोगों की वृद्धि हुई। सार्वजनिक क्षेत्र तथा संगठित निजी क्षेत्रों को मिलाकर सेवानियोजित व्यक्तियों की संख्या में लगभग

80 हजार की कमी हुई। देश में प्रतिवर्ष कर्मकारों की संख्या 70 लाख के हिसाब से बढ़ रही है जबकि जनसंख्या लगभग 175 लाख बढ़ रही है। जीविका की खोज में गांव के गरीब शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं क्योंकि नगरों में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण हो रहा है। महानगरों की आधी जनसंख्या मलिन बस्तियों में रह रही है। यदि भूमि का बहुत व्यापक पुनर्वितरण हुआ होता और वहां पर खेती के लिए सिंचाई आदि का व्यापक प्रबन्ध किया जाता तो गांव के गरीब गांव में ही रहते और उनके पास जीविका का एक सुनिश्चित साधन होता। जापान जैसे विकसित देश में केवल 6 प्रतिशत लोग ही खेती में लगे हैं फिर भी वहां पर 3.5 एकड़ पर हदबन्दी है। जापान में कुल 70 लाख लोग खेती में लगे हैं। भारतवर्ष में खेत मजदूरों की संख्या ही इससे दस गुना से अधिक है और यहां पर सिंचित भूमि पर हदबन्दी आम तौर से 18 एकड़ है।

रिजर्व बैंक के सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिवर्ष देश में एक लाख हेक्टेयर या 2.5 लाख एकड़ भूमि का क्रय–विक्रय होता है। सरकार बाजार दर से स्वयं इस भूमि को खरीद कर भूमि–विहीनों में वितरित कर सकती है। यदि यह क्रिया बराबर चलती रहे तो सीलिंग से निकली भूमि से कहीं अधिक भूमि कुछ ही वर्षों में वितरित हो जाएगी और धीरे–धीरे भूमि के स्वामित्व में विषमता कम होगी। यदि एक लाख हेक्टेयर कृषि भूमि का मूल्य 1,000 करोड़ रुपया भी मान लिया जाए तो यह कुल बजट व्यय के मात्र 0.3 प्रतिशत से भी कम है। यह धनराशि भूमिहीनों को कर्ज के रूप में भी दी जा सकती है जिसे वे बाद में किश्तों में अदा कर सकते हैं। भारत सरकार प्रतिवर्ष लगभग 30,000 करोड़ रुपया ऋण और अग्रिम विभिन्न कार्यों के लिए देती है। प्रतिवर्ष 800 करोड़ रुपया सरकारी कर्मचारियों को भूमि, कार, मोटर साइकिल आदि खरीदने के लिए ऋण देती है। इतना ही प्रावधान यदि भूमिहीनों को भूमि खरीदने के लिए कर दिया जाए तो प्रतिवर्ष उन्हें लगभग 80,000 हेक्टेयर खेती के लिए अच्छी भूमि मिल सकती है। ग्रामीण क्षेत्र में कुल 57 प्रतिशत ऐसे घराने हैं जिनके पास कोई भूमि नहीं है या 0.5 हेक्टेयर से कम भूमि है। इन्हें बगैर भूमि दिए न तो नगरों की ओर इनका पलायन रोका जा सकता है और न ही जिस घोर दरिद्रता में वे दिन गुजारते हैं उसमें कोई सुधार लाया जा सकता है।

इनकी स्थिति सुधारने के लिए यह भी आवश्यक है कि जहां तक सम्भव हो गांवों में ही इनके लिए मजदूरी के अवसर बढ़ाए जाएं। जब सिंचाई बढ़ती है तो खेती में मजदूरी के

एक ऐसा भी मामला प्रकाश में आया जहां बडोही आदिवासी ग्राम में लेखपाल ने कई फर्जी पट्टे इकट्ठे करके जो खेत एक दूसरे से लगे हुए थे उस पर अपना फार्म बनाकर खेती करना शुरू कर दिया। फार्म 72 बीघे अर्थात् 18 हेक्टेयर का है जहां पम्पिंग सेट आदि लगा हुआ है।

अवसर बढ़ते हैं। देश में 37 प्रतिशत कृषि भूमि ही सिंचित है और सिंचाई में होने वाले सार्वजनिक निवेश में कमी आ रही है। भारत सरकार प्रतिवर्ष 500 करोड़ रुपये से भी कम सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण पर व्यय करती है जो उसके सम्पूर्ण बजट का मात्र 0.12 प्रतिशत है। पुलिस पर इससे चौदह गुना अधिक खर्च होता है। नवीं पंचवर्षीय योजना में सिंचाई पर व्यय होने वाले हिस्से को भी घटा दिया गया है।

वृक्षारोपण से रोजगार

गांवों में ऐसे बहुत से कार्य हैं जिनमें अनगिनत मजदूरों को काम मिल सकता है। वर्षा के पानी को रोकना इनमें सबसे महत्वपूर्ण है। गांवों में व्यापक मेड़बन्दी करके अवरोध बांध, बन्धिया, तालाब, पोखरों आदि का निर्माण करने से न केवल रोजगार का अवसर बढ़ेगा वरन् सिंचाई की व्यवस्था में व्यापक विस्तार होगा तथा जलस्तर जो तेजी से नीचे जा रहा है उसे रोका जा सकेगा। देश की कृषि भूमि का दो–तिहाई भाग भूमि–क्षरण से प्रभावित है। परन्तु मृदा और जलसंरक्षण पर भारत सरकार राजस्व लेखे से 32 करोड़ रुपये और पूंजी लेखे से 3 करोड़ रुपये अर्थात् कुल 35 करोड़ रुपये खर्च करती है (देखिए, *केन्द्रीय सरकार का 2000–2001 का वार्षिक वित्तीय विवरण,* पृष्ठ 5 और पृष्ठ 8) राज्य सरकारों का भी यही रवैया है। राज्य सरकारें अपने बजट का 7 प्रतिशत सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर व्यय करती हैं तथा मृदा तथा जल–संरक्षण पर 0.4 प्रतिशत व्यय करती हैं। (देखिए, *रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन फरवरी 1999*)। वृक्षारोपण भी एक ऐसा कार्य है जिसे तमाम कृषि योग्य बंजर भूमि तथा अन्य खाली भूमि पर सम्पादित किया जा सकता है और जिसमें लोगों को गांव में ही रोजगार मिल सकता है। कृषि योग्य बंजर भूमि का क्षेत्रफल 150 लाख हेक्टेयर तथा पुरानी परती भूमि का क्षेत्रफल 90 लाख हेक्टेयर है। इसके बहुत बड़े भाग को वृक्षों से आच्छादित किया जा सकता है। यदि यह मान लिया जाए कि एक हेक्टेयर वृक्षारोपण और उसके रख–रखाव पर एक व्यक्ति को नियमित रूप से काम मिल सकता है तो बेकार भूमि पर वृक्षारोपण में लगभग 2 करोड़ व्यक्ति लगाए जा सकते हैं। परन्तु इस कार्य के लिए बजट में कोई प्रावधान नहीं है। वन और वन्य जीव पर राज्य सरकारें लगभग 4,000 करोड़ रुपया व्यय करती हैं पर यह केवल वन क्षेत्र के वनों के लिए ही है। वन क्षेत्र से बाहर खाली भूमि पर वृक्षारोपण के लिए ग्राम पंचायतें अधिकृत हैं परन्तु इसके लिए उनके पास कोई साधन नहीं हैं।

देश को स्वतन्त्र करने के लिए इस देश में एक महान आन्दोलन चला और इस नई ऊर्जा से सारा देश आप्लावित हुआ। यदि देश का सही माने में निर्माण किया जाता तो यह ऊर्जा उसी प्रकार बनी रहती और देश का तेजी से रूपान्तर और नवनिर्माण होता। परन्तु विकास की एक ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ की गई, जिससे जनसाधारण निराश और उदासीन हो गया क्योंकि औपनिवेशिक ढांचे को बदला नहीं गया। अंग्रेजों द्वारा स्थापित ढांचे में आमूल परिवर्तन किए बगैर इस देश की किसी भी समस्या का समाधान सम्भव नहीं है। ❑

ग्रामीण विकास की प्राथमिकताओं को बदलने की जरूरत

भारत डोगरा*

इस लेख में विद्वान लेखक ने बताया है कि स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद हमारे देश में सरकार ने गरीबों के हित में अनेक कदम उठाए लेकिन शोषण के सबसे ज्यादा शिकार बंधक मजदूरों की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। हमने अपनी कृषि में पैदावार बढ़ाने के लिए विदेशी तकनीकों का सहारा लिया और देश में सदियों से चली आ रही देशी तकनीकों को कोई महत्व नहीं दिया। इस तरह हमने अपने दस्तकारों की उपेक्षा की। लेखक का कहना है कि अभी देर नहीं हुई है यदि आज भी हम गांवों में बैठे बहुत से तेली, लुहार, जुलाहे, बढ़ई आदि दस्तकारों की प्रतिभा का लाभ उठाएं तो ग्रामीण भारत की तस्वीर बदल सकती है।

* वरिष्ठ पत्रकार

जब वर्ष 1975 में हमारे देश में बंधक मजदूरी के उन्मूलन का कानून बनाने की तैयारी चल रही थी, तब एक बहुत वाजिब सवाल उठा था – यह कानून बनाना तो बहुत जरूरी है और इसका स्वागत है, पर राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रयास आजादी के 28 वर्ष बाद क्यों हो रहा है? बहुत पहले ही यह कानून बन जाना चाहिए था और बंधक मजदूरी का उन्मूलन हो जाना चाहिए था।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि बंधक मजदूरी के उन्मूलन का राष्ट्रीय स्तर पर कानून आजादी के तुरंत बाद पहले दो या तीन वर्षों में ही बन जाना चाहिए था। पं. जवाहरलाल नेहरू (जो हमारे पहले प्रधानमंत्री थे) सामन्ती शोषण के बहुत विरुद्ध थे। कम से कम उनके जैसे नेता से यह पूरी उम्मीद की जानी चाहिए थी कि वे बंधक मजदूरी के उन्मूलन को ऊंची प्राथमिकता देते। आश्चर्य की बात है कि ऐसा नहीं हुआ और इस बारे में राष्ट्रीय स्तर का कानून बनाने के लिए राष्ट्र को लगभग तीन दशक तक इंतजार करना पड़ा।

कुछ लोग कह सकते हैं कि संविधान में पहले से ऐसे प्रावधान मौजूद थे जिनके तहत बंधक मजदूरी के विरुद्ध असरदार कार्यवाही की जा सकती थी। किन्तु इनका उपयोग भी बंधक मजदूरी के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर कोई अभियान चलाने के लिए नहीं किया गया तथा अनेक राज्यों में अपने–अपने ढंग की बंधक मजदूरी प्रथाएं बेरोकटोक चलती रहीं। हो सकता है कि कुछ राज्यों में इन्हें रोकने के कुछ छिटपुट प्रयास हुए हों, पर राष्ट्रीय स्तर पर कोई व्यापक प्रयास नहीं हुआ।

यदि पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे नेता के शीर्ष पर रहने के बावजूद ऐसा प्रयास नहीं हुआ तो आखिर क्यों? देश के अधिकांश बंधक मजदूर दूर–दूर के गांवों में थे। इन गांवों में जो आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से सबसे नीचे का, सबसे शोषित, सबसे बेआवाज, चुपचाप सहने को मजबूर वर्ग था वह इन बंधक मजदूरों का वर्ग था। इन गांवों में जो अधिकारी और नेता आते–जाते थे, उनका सम्पर्क इन बंधक मजदूरों से प्रायः होता ही नहीं था। वे किसानों और भूस्वामियों से मिलते थे, शायद कभी–कभी बहुत कम भूमि वाले या भूमिहीन स्वतंत्र मजदूरों से भी मिलते थे, पर जो सबसे शोषित और बेआवाज लोग हैं, उनसे वे मिलते ही नहीं थे और अनके दुख–दर्द की खबर भी नहीं लेते थे। कुछ नेता और अधिकारी जरूर अपवाद रहे होंगे तथा उन्होने सबसे निचली श्रेणी की भलाई का भी प्रयास किया होगा पर इनकी संख्या इतनी कम थी कि उसका राष्ट्रीय स्तर पर कोई खास असर नहीं हुआ। फलस्वरूप नेहरू जी के तमाम सामन्ती शोषण विरोधी विचारों के बावजूद उनके प्रधानमंत्रित्व काल के 17 वर्षों में बंधक मजदूरी व्यापक स्तर पर देश में बनी रही और इसके विरुद्ध कोई राष्ट्रीय स्तर का अभियान नहीं चलाया गया।

आजादी के लगभग तीन दशक बाद जो बंधक मजदूरी के विरुद्ध अभियान चला उसका ओज भी कुछ समय बाद कम होने लगा। यही कारण है कि आज भी किसी न किसी रूप में देश के विभिन्न भागों में बंधक मजदूरी मौजूद है।

एक दूसरा उदाहरण उन सफाईकर्मियों का है जो गांव में अनेक घरों से मैला उठाने का काम करते रहे हैं। महात्मा गांधी के समय से ही यह स्वीकार किया गया कि यह कार्य मानवीय गरिमा के प्रतिकूल है और इस कार्य को समाप्त कर कोई संतोषजनक वैकल्पिक रोजगार इन सफाईकर्मियों को उपलब्ध कराना चाहिए। स्वतंत्र भारत की सरकार ने कितनी ही बार इस आशय की घोषणा की और मैला ढोने की प्रथा के उन्मूलन की अंतिम तिथि भी निर्धारित कर दी। इसके बावजूद आज तक कितने ही गांवों में सफाईकर्मी, विशेषकर महिला सफाईकर्मी, मैला ढोने का कार्य करने को मजबूर हैं। हाल ही में पश्चिम उत्तर प्रदेश के समृद्ध माने जाने वाले अनेक गांवों में पूछताछ करने पर इस लेखक को पता चला कि यहां अभी तक मैला ढोने का काम चल रहा है।

इन दो उदाहरणों से आजादी के बाद के ग्रामीण विकास के प्रयास की सबसे बड़ी विफलता प्रकट होती है – अनेक अन्य उपलब्धियों के बावजूद हम सबसे नीचे के लगभग 20 प्रतिशत या 25 प्रतिशत लोगों के साथ न्याय नहीं कर सके। जरूरत इस बात की थी कि सबसे अधिक ध्यान इस सबसे कमजोर और शोषित हिस्से पर दिया जाता, पर वास्तव में हमने उन पर कम ध्यान दिया, और जो थोड़ा बहुत ध्यान दिया भी वह बहुत देर से दिया। इस कारण सबसे अधिक व्यथा की करुण पुकारें दब कर रह गईं।

आजादी की लड़ाई के दिनों में बारडोली आंदोलन बहुत चर्चा का केन्द्र बना था। निश्चय ही यहां किसानों से अंग्रेज सरकार ने बहुत अन्याय किया था और गांधी जी के नेतृत्व में इस अन्याय का विरोध हुआ तो देश भर के किसानों ने इसका स्वागत किया। एक दिन गांधी जी की बाबा अंबेडकर से बातचीत हो रही थी। बारडोली का जिक्र आया तो अंबेडकर ने कहा कि किसानों के अधिकार मिलें यह जरूरी है पर क्या आपने यह पता करने का प्रयास किया कि इन्हीं किसानों का व्यवहार उन मजदूरों के प्रति कैसा है, जिन्हें वे अछूत मानते हैं। यह एक वाजिब सवाल था। पूरे गांव की तरक्की की बात के बारे में सोचना बहुत अच्छा है, पर यह संभव बनाने के लिए पहले यह पूछना चाहिए कि गांव के प्रमुख लोगों का सबसे गरीब लोगों तथा सबसे नीची श्रेणी के लोगों के प्रति व्यवहार कैसा है। यदि वे उनसे बहुत अन्याय करते हैं तो पहले उस अन्याय को दूर करना होगा।

अगले एक या दो दशक के लिए यह प्राथमिकता स्पष्ट रूप से और दृढ़ता से तय हो जानी चाहिए कि ग्रामीण समाज में जो सबसे नीचे के एक चौथाई लोग हैं उनकी गरीबी दूर करने और उनके साथ होने वाले अन्याय को दूर करने पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाएगा।

दूसरी मुख्य गलती ग्रामीण विकास में यह हुई कि हमने अपनी परंपरागत तकनीकों को पिछड़ा हुआ मान लिया और उन्नत या विकसित तकनीक के लिए पश्चिमी देशों की ओर देखने लगे। अधिकारियों ने सोचा कि यहां उत्पादकता कम है जबकि पश्चिमी देशों में उत्पादकता ज्यादा है। अतः वहीं की तकनीक को उन्नत मानना चाहिए। वे इस बात को भूल गए कि हमारी उत्पादकता अंग्रेजी शासन द्वारा गांवों की लूट के कारण कम हुई थी।

अंग्रेजों ने किसानों को लूटा, पंचायतों को शक्तिविहीन किया, परंपरागत जल–स्रोतों को उजड़ने दिया, दस्तकारियों को नष्ट किया जिसके कारण हमारे गांव पिछड़ गए। अतः सही उपाय यह था कि पंचायतों को शक्तिशाली बनाया जाता, दस्तकारियों को नया जीवन

एक अन्य अंग्रेज विशेषज्ञ ए. ओ. ह्यूम ने लिखा कि गेहूं के खेत से खरपतवार दूर रखने की जो भारतीय किसानों की तकनीक है, वह इतनी उन्नत है कि यूरोप के निन्यानवे प्रतिशत खेत उसे देखकर शरमा जाएंगे। ह्यूम ने भारतीय अनाज संग्रहण की प्रशंसा करते हुए लिखा कि भारतीय किसान आपको 20 वर्ष पहले स्टोर किए गए अनाज का मटका दिखा सकते हैं जिसका अनाज बिल्कुल खराब नहीं हुआ है।

मिलता, परंपरागत जल–स्रोतों पर पूरा ध्यान दिया जाता। इन सार्थक कार्यों की तो उपेक्षा हुई पर बाहरी तकनीक लाने पर जोर दिया गया जिससे परंपरागत भारत की अपनी तकनीकी जानकारी उपेक्षित हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में ब्रिटिश सरकार के कहने पर बहुचर्चित विशेषज्ञ डा. जान आगस्टस वोल्कर ने भारतीय कृषि पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। डा. वोल्कर ने भारतीय कृषि के पिछड़ेपन की बात करने वाले विदेशी विशेषज्ञों को चुनौती देते हुए उनका ध्यान परंपरागत भारतीय कृषि के अनेक उन्नत पक्षों की ओर दिलाया। वोल्कर ने कहा कि यहां कमी है तो साधनों की (जिसके लिए अंग्रेज शासन जिम्मेदार था) पर कृषि संबधी उन्नत तकनीक की कोई कमी नहीं है। वोल्कर ने लिखा इस बारे में भारतीय किसान पहले से इतना जानता है कि उसे किसी बाहरी सलाह की जरूरत नहीं है, भारत में जिस प्रकार खेतों को खरपतवार से मुक्त रखा जाता है, यहां कुंओं से पानी जैसे प्राप्त किया जाता है, यहां मिट्टी के बारे में जितनी जानकारी है, फसल बोने और काटने के बिल्कुल ठीक समय का जो ज्ञान है, उसकी मिसाल कहीं और नहीं मिलेगी। वोल्कर ने लिखा, "अपनी यात्रा के दौरान अनेक स्थानों पर सावधानी, धैर्य ओर मेहनत के मेल से की गई जैसी खेती मैने भारत में देखी है, वैसी अन्य कहीं नहीं देखी है।

वोल्कर को भारतीय कृषि के औजार सुधारने के लिए परामर्श देने को कहा गया था, पर वोल्कर ने अच्छी तरह अध्ययन के बाद पाया कि वे अपने स्थान और परिस्थितियों के अनुसार पहले ही बहुत उपयुक्त और अनुकूल हैं।

अंग्रेजी शासनकाल में भारतीय कृषि का पहला इंसपैक्टर जनरल जे. मालीसन को बनाया गया था। मालीसन ने भी भारतीय कृषि औजारों को अनुपयुक्त मानने वाले लोगों को चुनौती देते हुए कहा कि उनसे की गई जुताई में जो सफाई और कुशलता देखी गई है, उसके आगे विश्व के सर्वश्रेष्ठ किसान भी नहीं ठहर सकते हैं। एक अन्य अंग्रेज विशेषज्ञ ए. ओ. ह्यूम ने लिखा कि गेहूं के खेत से खरपतवार दूर रखने की जो भारतीय किसानों की तकनीक है, वह इतनी उन्नत है कि यूरोप के निन्यानवे प्रतिशत खेत उसे देखकर शरमा जाएंगे। ह्यूम ने भारतीय अनाज संग्रहण की प्रशंसा करते हुए लिखा कि भारतीय किसान आपको 20 वर्ष पहले स्टोर किए गए अनाज का मटका दिखा सकते हैं जिसका अनाज बिल्कुल खराब नहीं हुआ है।

अतः आजादी के बाद हमें अपनी परंपरागत लुप्त होती तकनीकों का भरपूर उपयोग अपने गांवों के पुर्ननिर्माण में करना चाहिए था। यह तो हमने किया नहीं पर बाहरी तकनीक पर निरंतर आश्रित बनते गए। हमारी जलवायु और अन्य स्थितियों के लिए क्या अनुकूल है इस पर हमने ध्यान नहीं दिया। अब तो कुछ गांवों में यह स्थिति आ गई है कि कुछ बुजुर्ग लोगों के पास ही कृषि का परंपरागत ज्ञान बचा है जबकि नई पीढ़ी तो इससे अनभिज्ञ है, बड़े बुजुर्गों के पास जो परंपरागत ज्ञान है उसे प्राप्त करने की इच्छा–शक्ति भी नई पीढ़ी में नहीं बची है। यह एक ऐसा संकट है जिसकी ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जा रहा है। यदि यही हाल रहा तो जो परंपरागत कृषि ज्ञान के रूप में हमारी बहुत बड़ी अमानत है, उसे हम सदा के लिए खो बैठेंगे। इस अमानत को किसी म्यूजियम में या छिटपुट प्रयास से नहीं बचाया जा सकता है। हमारे

आज भी हमारे गांवों में बेरोजगार, लाचार बैठे बहुत से तेली, कुम्हार, जुलाहे, लुहार, बढ़ई आदि दस्तकार इंतजार कर रहे हैं कि ग्रामीण विकास की प्राथमिकताओं को बदलकर उनकी प्रतिभा, परंपरागत तकनीक और मेहनत का भरपूर लाभ उठाया जाए।

देश में लाखों गांव हैं जिनमें अपनी–अपनी जरूरत के अनुरूप परंपरागत ज्ञान है। हमें इस परंपरागत तकनीक का महत्व समझना चाहिए, जहां थोड़े–बहुत बदलाव की जरूरत हो उसकी व्यवस्था कर इनका उपयोग अपने खेतों और खलिहानों में करना चाहिए। इसमें से अधिकांश तकनीकों के बारे में पता चलेगा कि ये सस्ती हैं, गांव की जरूरतों के अनुरूप हैं तथा गांव की आत्म–निर्भरता बढ़ाने में सहायक हैं।

इस सन्दर्भ में गांधीजी के चरखे के संदेश पर अधिक ध्यान देना जरूरी है। गांधीजी अपने विभिन्न संदेशों में इसे बहुत अधिक महत्व देते थे और यह बात उन्होने कई बार, कई तरीकों से कही। यदि गांधीजी की बात मानी जाती तो आज देश के लगभग हर गांव में देसी कपास की खेती होती, चरखे पर सूत कतता, हथकरघे पर कपड़े की बुनाई होती और गांव का दर्जी ही इसे सी देता। कपास की खेती से लेकर कपड़े की सिलाई तक सारा काम अपने गांव में ही तथा पूरी तरह अपने गांव का बना कपड़ा पहनने का गौरव हर गांववासी को प्राप्त होता।

इसी तरह चमड़े के जूते, पेटी, पर्स और अन्य सामान, जैविक खाद तथा कीटनाशक, देसी बीज, हर तरह के आवश्यक कृषि औजार, बेकरी के उत्पाद, घी, खाद्य तेल आदि के उत्पादन में हर गांव पंचायत आत्म–निर्भर होती। विविध तरह के अनाज, सब्जी, फल,

(शेष पृष्ठ 68 पर)

अ नु वि नि

प्रस्ताव

राज्य स्तर की अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति
निगमों तथा अन्य अधिकृत अभिकरणों के माध्यम से गरीबी रेखा की सीमा से दुगुने
तक के आय वाले अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के लिए आय एवं रोजगारोन्मुख
अवसर उत्पन्न करने के लिए कृषि, यातायात, सेवा क्षेत्र, बागवानी, पशुपालन, लघु उद्योग
जैसी व्यवहार्य योजनाओं को मंजूर करते हुए अनुसूचित जाति एवं
अनुसूचित जनजाति वर्ग को ब्याज की
रियायती दरों पर वित्तीय सहायता
प्रदान की जा रही है।

---

31 जुलाई, 2000 तक 1212.73 करोड़ रुपए की 2119 योजनाएं मंजूर
की गईं जिसमें निगम का 807.76 करोड़ रुपए का सहयोग रहा। 2.59 लाख लाभग्राहियों
को लाभ देते हुए संचयी निवल वितरण 628.70 करोड़ रुपए बढ़ा।

8922 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लाभग्राहियों को लाभ
देते हुए 203 प्रशिक्षण कार्यक्रम मंजूर किए।

कृपया विस्तृत विवरण हेतु सम्पर्क करें :
राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम,
(भारत सरकार का उपक्रम)
8, बालाजी एस्टेट, गुरु रविदास मार्ग, कालकाजी,
नई दिल्ली–110019
टेलीफोन नं. 6468936,38,40,46, 6473115
फैक्सः 6468941, 6468943
E-mail: nsfdc @ Satyam.net.in
अथवा
संबंधित राज्य के अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति वित्त निगम

ग्रामीण आवास नीति : एक विवेचन

भारती सिवस्वामी सिहाग*

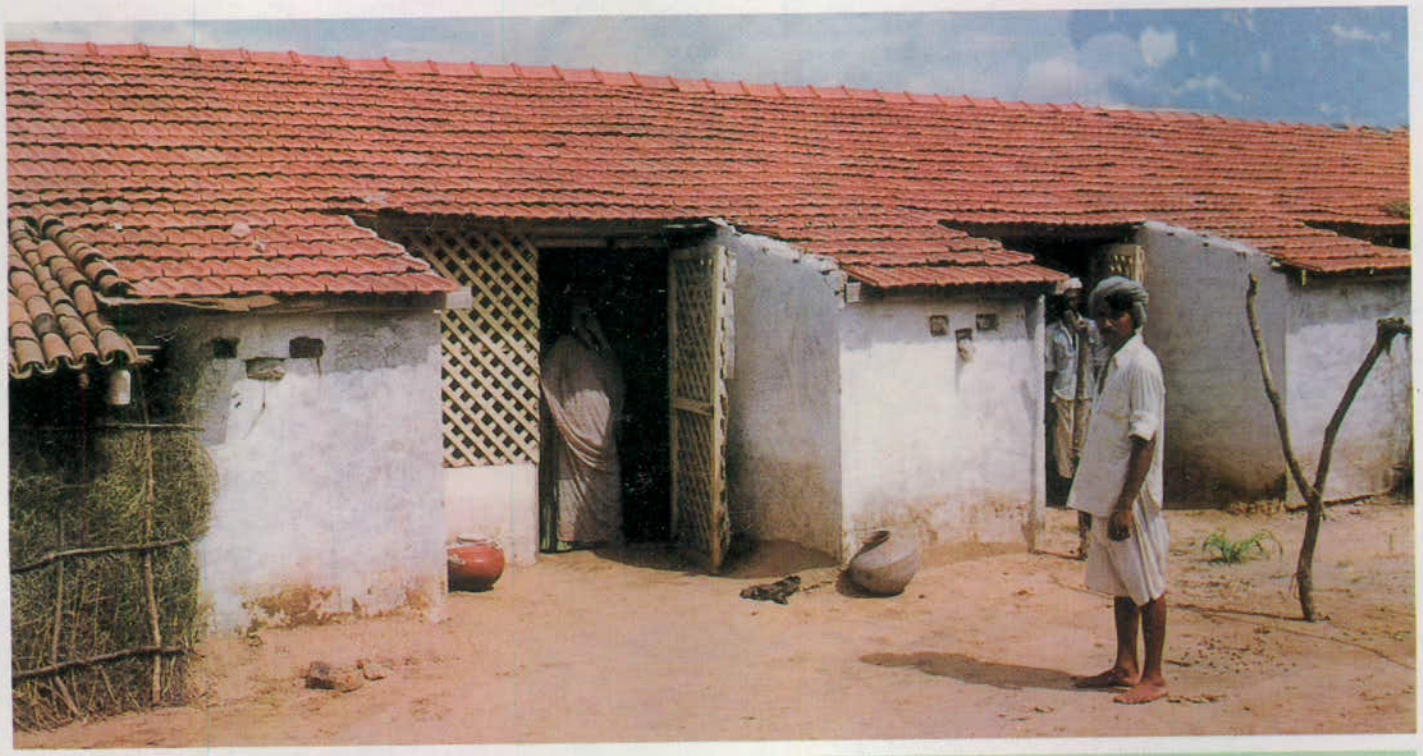

आवास मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है और हमारे देश में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, करोड़ों परिवारों के पास रहने के लिए आवास नहीं हैं या जो हैं वह रहने लायक नहीं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति/जनजाति, के गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाले परिवारों और मुक्त हुए बंधुआ मजदूरों को निशुल्क आवास उपलब्ध कराने के लिए केन्द्र ने 1985–86 से इन्दिरा आवास योजना शुरू कर रखी है। इस योजना के तहत अब तब 62 लाख मकान बनाए जा चुके हैं और इन पर 10,000 करोड़ रुपये से अधिक खर्च किए जा चुके हैं। लेकिन हाल ही में सरकार ने महसूस किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सभी को मकान उपलब्ध कराने का काम बहुत बड़ा है और इसे सरकारी प्रयासों से पूरा नहीं किया जा सकता। अतः सरकार अब मकान बनाकर देने के बजाय मकान बनाने के लिए सुविधाएं प्रदान करने लगी है। इन सुविधाओं में भूमि, धन, उचित प्रौद्योगिकी, डिजाइन उपलब्ध कराना और कारीगरों का प्रशिक्षण शामिल है। इसके लिए प्रयास किस तरह किए जा रहे हैं, क्या कठिनाइयां आ रही हैं और सफलता की क्या संभावनाएं हैं, पढ़िए इस बारे में जानकारी इस लेख में।

* निदेशक, ग्रामीण विकास मंत्रालय

ग्रामीण भारत में प्रगति और विकास के तमाम दावों के बावजूद देश का ग्रामीण परिवेश आज भी एक निराशाजनक तस्वीर पेश करता है। गांव में सफाई, पेय जल, गंदे पानी की निकासी, कचरे और कृषि जन्य कूड़े–करकट का निपटान जैसी बुनियादी सुविधाओं का नितांत अभाव है। इससे पर्यावरण बिगड़ रहा है और भूमि, जल, मिट्टी तथा हवा जैसे सामान्य संसाधन प्रदूषित हो रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के अनुसार गांवों में करीब 80 प्रतिशत बीमारियों का कारण पर्यावरण का स्वच्छ न होना है। ग्रामीणों की स्थिति का सही–सही पता ग्रामीण मकानों की हालत संबंधी जनगणना आंकड़ों से लगता है। 1991 की जनगणना के अनुसार 11.2 करोड़ ग्रामीण परिवारों में से करीब 40.82 प्रतिशत परिवार एक कमरे के मकान में रह रहे थे। इसी तरह 30.65 प्रतिशत परिवार दो कमरे के मकान में और 13.51 प्रतिशत परिवार तीन या उससे अधिक कमरों के मकान में रह रहे थे। करीब 33 प्रतिशत परिवार घास–फूस और छप्पर की छत वाले घर में, 6.05 प्रतिशत गारे और कच्ची ईंटों से बने घर में और 4.22 प्रतिशत तम्बुओं में रहते थे। इसके अलावा दीवारों की गुणवत्ता पर अगर नज़र डालें तो कुल परिवारों में से 47.27 परिवार प्रतिशत घास और पुआल से बनी दीवारों करीब छह प्रतिशत कच्ची ईटों की दीवारों और करीब 4 प्रतिशत तम्बू और कपड़े की दीवारों के घरों में रह रहे थे। 1991 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण मकानों में से करीब 70 प्रतिशत ऐसे कच्चे मकानों मे 9 प्रतिशत रहने योग्य नहीं थे और 25 प्रतिशत रह सकने योग्य थे। 35 प्रतिशत पक्के मकान थे। इन आंकड़ों के अनुसार 90 प्रतिशत ग्रामीण मकान ऐसे थे जिनमें शौचालय की व्यवस्था नहीं थी। इससे पता चलता है कि गरीबी और आवास के बीच सीधा संबंध है। एक गरीब व्यक्ति के पास या तो मकान होगा नहीं या फिर वह न रहने योग्य कच्चे मकान में रह रहा होगा।

मानव के अस्तित्व के लिए मकान एक बुनियादी आवश्यकता है। आम नागरिक के लिए मकान होना उसे पर्याप्त आर्थिक सुरक्षा, आत्म–सम्मान और समाज में प्रतिष्ठा प्रदान करता है। एक बेघर व्यक्ति के लिए, मकान का स्वामी बनना उसके सामाजिक जीवन में जबरदस्त परिवर्तन ला देता है, जिससे उसे एक पहचान मिलती है और वह आस–पास के वातावरण से जुड़ जाता है। इस वास्तविकता के बावजूद, स्वतंत्रता के बाद के पहले 25 वर्षों में ग्रामीण आवास क्षेत्र की समस्याओं पर सरकार ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। पिछली सदी में 80 के दशक तक इस क्षेत्र में सरकार का हस्तक्षेप यदा–कदा और अपर्याप्त रहा।

ग्रामीण आवास में जो कमियां पाई गई हैं उनमें सबसे अहम् यह है भवनों का डिजाइन तैयार करने, निर्माण प्रौद्योगिकी और सामग्री के बारे में वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित और उपयुक्त विकल्पों की या तो जानकारी नहीं है या फिर ये विकल्प लोगों की पहुंच से बाहर हैं। आवास नीतियां एकांगी हैं और बायोमास नवीकरण नीतियों से नहीं जोड़ा गया है। यहां तक कि ग्रामीण आवास और निर्माण के लिए अधिकतर सामग्री अभी भी वनों से जुटाई जा रही है।

देश के विभाजन के तुरन्त बाद शरणार्थी पुनर्वास मंत्रालय द्वारा शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए एक आवास कार्यक्रम तत्काल शुरू किया गया था और वह 1960 तक जारी रहा। उत्तर भारत में करीब 5 लाख परिवारों को विभिन्न स्थलों पर आश्रय प्रदान किया गया। 1957 में समुदाय विकास आंदोलन के हिस्से के रूप में एक ग्रामीण आवास कार्यक्रम भी शुरू किया गया, जिसमें प्रत्येक मकान के लिए अधिकतम 5,000 रुपये का ऋण व्यक्तियों और सहकारी संगठनों को दिया गया। किन्तु, इस कार्यक्रम के तहत् पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1980) के अंत तक मात्र 67,000 मकान ही बन पाए थे। 1972–73 मे प्राक्कलन समिति द्वारा की गई कुछ प्रतिकूल टिप्पणियों के बाद सरकार ने तत्काल रिहायशी प्लाट बनाम निर्माण सहायता कार्यक्रम शुरू किया। राष्ट्रीय विकास परिषद की सिफारिश पर पहली जनवरी 1974 से इसे राज्य क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया गया।

ग्रामीण निर्धनों के लिए आज भारत सरकार के प्रमुख आवास कार्यक्रम के रूप में उभरी 'इंदिरा आवास योजना' का उद्भव वास्तव में आठवें दशक के प्रारंभ में शुरू हुए ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम में देखा जा सकता है। 1980 में शुरू हुए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन आर ई पी) और 1983 में शुरू हुए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर एल ई जी पी) के तहत् मकानों का निमार्ण एक प्रमुख गतिविधि था।

जून 1985 में आर एल ई जी पी के तहत् धन का एक हिस्सा अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और मुक्त कराए गए बंधुआ मजदूरों के लिए मकान बनाने हेतु निर्धारित किया गया। परिणामस्वरूप ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम की एक उप–योजना के रूप में 1985–86 में इंदिरा आवास योजना शुरू की गई। अप्रैल 1989 में जब जवाहर रोजगाार योजना शुरू हुई तो इंदिरा आवास योजना को उसकी उप–योजना के रूप में जारी रखा गया। जवाहर रोजगार योजना के लिए आवंटित धन का 6 प्रतिशत हिस्सा इंदिरा आवास योजना के लिए निधारित किया गया। 1993–94 से इंदिरा आवास योजना का दायरा बढ़ाया गया और इसके अंतर्गत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति परिवारों के अलावा ग्रामीण क्षेत्रों के अन्य ऐसे परिवार भी शामिल किए गए जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे थे। इसके साथ ही कार्यक्रम के लिए निर्धारित आवंटन भी बढ़ाया गया। जवाहर रोजगार योजना के लिए राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध संसाधनों के 6 प्रतिशत की बजाय अब 10 प्रतिशत हिस्सा इंदिरा आवास योजना के लिए तय किया गया। किन्तु, इसमें यह शर्त भी रखी गई कि गैर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति परिवारों को पहुंचने वाले लाभ जवाहर रोजगार योजना के कुल आवंटन का 4 प्रतिशत से अधिक नहीं होने चाहिए। पहली जनवरी 1996 से इंदिरा आवास योजना को जवाहर रोजगार योजना से अलग करके एक स्वतंत्र योजना बना दिया गया है।

इंदिरा आवास योजना के तहत् अभी तक 62 लाख से अधिक मकान बनाए जा चुके हैं, जिन पर 10,000 करोड़ रुपये से अधिक की लागत आई है। किन्तु, जैसा कि जनगणना के आंकड़ों से पता चलता है, मकानों की मांग और उपलब्धता के बीच अन्तराल बढ़ता ही

जा रहा है। अगर हम ग्रामीण क्षेत्रों और उनके आवास में मकानों की गुणवत्ता पर ध्यान दें तो स्थिति बड़ी ही दयनीय और निराशाजनक दिखाई देती है। ग्रामीण आवास सहित भारत के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं के बारे में समय–समय पर कराए गए सर्वेक्षणों, मूल्यांकनों और अध्ययनों से ग्रामीण क्षेत्र की वास्तविकता के बारे में हमें पता लगता है। ग्रामीण आवास में जो कमियां पाई गई हैं उनमें सबसे अहम् यह है भवनों का डिजाइन तैयार करने, निर्माण प्रौद्योगिकी और सामग्री के बारे में वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित और उपयुक्त विकल्पों की या तो जानकारी नहीं है या फिर ये विकल्प लोगों की पहुंच से बाहर हैं। आवास नीतियां एकांगी हैं और बायोमास नवीकरण नीतियों से नहीं जोड़ा गया है। यहां तक कि ग्रामीण आवास और निर्माण के लिए अधिकतर सामग्री अभी भी वनों से जुटाई जा रही है। मूलभूत स्थल और सेवाओं के प्रावधान को बढ़ावा देने के एकजुट प्रयास भी नहीं किए जा रहे हैं।

भारतीय संविधान के अनुसार आवास क्षेत्र राज्य सूची के अन्तर्गत आता है। किन्तु, आवास समस्या के व्यापक आयामों को देखते हुए भारत सरकार ने आठवें दशक से ग्रामीण आवास क्षेत्र में एक वृहत नीति तैयार करने और उसे लागू करने में संरचनात्मक भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद आवास नीति में इन बातों को लेकर व्यापक बदलाव आए हैं कि नीति का मुख्य जोर किस बात पर हो, रणनीति कैसी हो और उपकरण कैसे हों। इसमें पिछले वर्षों में प्राप्त अनुभवों को देखते हुए ये बदलाव जरूरी समझे गए। मकान बनाने के लिए धन उपलब्ध कराने के वास्ते राज्यों को पर्याप्त बजटीय संसाधनों का हस्तांतरण चूंकि केन्द्र की नीति का आधार रहा है, अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि बहस सब्सिडी की मात्रा, सब्सिडी का दायरा बढ़ाए जाने और सब्सिडी देने के स्वरूप पर केन्द्रित हो गई है। पिछले वर्षों तक सरकार की भूमिका का आधार यह रहा है कि वह मकान बनाने वाली यानी मकान उपलब्ध कराने वाली संस्था होगी। आवास और शहरी विकास निगम (हडको) से लेकर राज्य आवास बोर्डों, राज्य आवास निगमों, विकास प्राधिकरणों आदि अनेक संस्थानों की स्थापना करना और उन्हें मुख्य रूप से मकानों तथा भवनों के निर्माण का दायित्व सौंपना इस बात का प्रमाण है कि सरकार ने अनिवार्य रूप से एक मकान निर्माता की भूमिका अदा की।

नब्बे के दशक में ग्रामीण आवास नीति के बारे में एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया गया। एक ओर घरेलू वित्तीय मजबूरियों और दूसरी ओर ग्रामीण आवास समस्याओं को अधिक गहराई से समझने के कारण नीति–निर्माताओं को इस मुद्दे पर फिर से विचार करने की प्रेरणा मिली। इस दशक में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कई क्षेत्रों में आम सहमति को बढ़ावा मिला। इससे भारत में आवास विकास, खासकर ग्रामीण आवास के क्षेत्र में नए कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गई। धीरे–धीरे यह महसूस किया गया कि ग्रामीण आवास की समस्या इतनी विराट है कि सबके लिए मकान उपलब्ध कराने का लक्ष्य हासिल करने की दिशा में सरकार के प्रयास हमेशा बौने ही रहेंगे।

यह महसूस किया जाने लगा है कि स्थायी मानव बस्तियों की स्थापना परस्पर सम्बद्ध नीतियों के विकास और स्वच्छ पेयजल, सफाई और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं तक सभी की पहुंच, बड़ी संख्या में लोगों की जान लेने वाली घातक बीमारियों की रोकथाम करने और कार्य करने के लिए सुरक्षित स्थलों का निर्माण तथा पर्यावरण को बढ़ावा देने के उपाय करने पर निर्भर करेगी।

मानव आवास के बारे में इस्तानबुल घोषणा में सभी के लिए उपयुक्त और कम लागत वाला मकान उपलब्ध कराने का संकल्प व्यक्त किया गया है। इस काम में सभी स्तरों पर सार्वजनिक, निजी और गैर–सरकारी संगठनों के सक्रिय प्रयासों से यह सुनिश्चित किया जाएगा कि बिना किसी भेदभाव के सभी व्यक्तियों और उनके परिवारों को उपयुक्त और कम लागत के मकान उपलब्ध हों तथा घोषणा में कम लागत वाले मकानों की आपूर्ति बढ़ाने पर बल दिया गया है और इसमें बाजार से उम्मीद की गई है कि वह कार्यकुशलता का परिचय दे तथा सामाजिक और पर्यावरण की दृष्टि से जिम्मेदाराना ढंग से काम करे, भूमि और ऋण लोगों को उपलब्ध हो और मकान खरीदने में कमजोर लोगों की सहायता की जाए। इस प्रयास में उनकी क्षमता बढाना, उचित प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और उपेक्षित तथा कमजोर वर्गों के सदस्यों के लिए विशेष उपाय लागू करना बड़ा महम्तपूर्ण है। इस प्रक्रिया में स्थायित्व की अनदेखी नहीं की जा सकती। यानी "लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने के प्रयासों में प्राकृतिक और मानव संसाधनों की रक्षा भी होनी चाहिए, क्योंकि इन्हीं संसाधनों पर भावी पीढ़ी का अस्तित्व कायम रहेगा।" 1998 की राष्ट्रीय आवास एवं पर्यावास नीति में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की भागीदारी पर जोर दिया गया है और सब्सिडी के स्थान पर लागत कम करने की नीतियों को अपनाने की सिफारिश की गई है। आज आवास और पर्यावास को समान महत्त्व दिया दिया जा रहा है। यह महसूस किया जाने लगा है कि स्थायी मानव बस्तियों की स्थापना परस्पर सम्बद्ध नीतियों के विकास और स्वच्छ पेयजल, सफाई और प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं तक सभी की पहुंच, बड़ी संख्या में लोगों की जान लेने वाली घातक बीमारियों की रोकथाम करने और कार्य करने के लिए सुरक्षित स्थलों का निर्माण तथा पर्यावरण को बढ़ावा देने के उपाय करने पर निर्भर करेगी।

निश्चय ही यह मार्ग बड़ा कठिन है। उदारीकरण की नीतियों के अंतर्गत वित्तीय साधनों पर प्रतिबंध लगेंगे और ऋणों पर पाबन्दी लगायी जाएगी, जिससे स्थानीय लोगों को मकान बनाने के लिए धन की उपलब्धता पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। पेयजल आपूर्ति, सफाई और सड़कों जैसी बुनियादी सेवाएं, जो अभी तक सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती रही हैं, अब उनके लिए सरकार द्वारा धन उपलब्ध करना जारी रखना संभव नहीं होगा। इतना ही नहीं भवन निर्माण सामग्री और मजदूरी में बढ़ोतरी को देखते हुए भवनों/मकानों पर लागत अधिक तेजी से बढ़ने की संभावना है।

हाल में आवास संबंधी सरकार की नीति में स्पष्टता आने लगी है। सरकार ने आवास को मानव की बुनियादी आवश्यकता मान लिया है, जिसे प्राथमिकता के आधार पर

उपलब्ध कराया जाना चाहिए। सरकार का लक्ष्य "सभी के लिए मकान" उपलब्ध कराना है। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में हर वर्ष 25 लाख मकान सरकार द्वारा बनाए जा रहे हैं, जिनमें निर्धन और उपेक्षित वर्गों को आवास उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वित्तमंत्री ने 1999 के बजट में घोषणा की थी कि सरकार सभी बेघरों को नौवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक मकान उपलब्ध कराने तथा सभी कच्चे मकानों को दसवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक अर्ध–पक्के या पक्के बनाने के प्रति वचनबद्ध है।

पर्याप्त और सस्ते आवास उपलब्ध कराने के लिए भूमि, मकानों के डिजाइन एवं प्रौद्योगिकी का उपलब्ध होना और मकान बनाने के लिए धन की व्यवस्था करने के लिए किसी संस्था का होना जरूरी है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस समय, देश में ग्रामीण आवास के लिए धन उपलब्ध कराने या आवास निर्माण प्रौद्योगिकी, डिजाइन और सामग्री अथवा पर्यावास जैसी गतिविधियों को मदद पहुंचाने के लिए कोई संस्था नहीं है। इसलिए इन गंभीर खामियों को दूर करने के लिए अनेक उपाय किए जा रहे हैं। इनमें निर्माति केन्द्रों की स्थापना, ग्रामीण आवास के बारे में अनुसंधान और विकास सुविधाओं को सुदृढ़ करना और ग्रामीण आवास के लिए राष्ट्रीय मिशन शुरू किया जाना शामिल हैं।

यह अपने में अलग तरह की चुनौती है। पहले संस्थागत ढांचे का विकास किया जाए और फिर यह सुनिश्चित किया जाए कि इन संस्थाओं के पास ऐसी जानकारी हस्तांतरित करने के साधन एवं क्षमता हो, जिससे लोगों का ज्ञान व्यापक बनाने में मदद मिले। स्थानीय लोगों की जानकारी, कौशल और अभिरुचि में परिवर्तन लाना जरूरी है। अगर हम ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयंसहायता समूहों की सहायता से मकानों का निर्माण करना शुरू करें तो यह कार्य और भी चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इतना ही नहीं ग्रामीण बस्तियों में मकान शहरी बस्तियों की भांति पास–पास नहीं बल्कि दूर–दूर फैले होते हैं।

निर्मति केन्द्रों को इस परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु मान लिया गया है। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, सूचना संप्रेषण, ग्रामीण राजगीरों, प्लंबरों आदि को प्रशिक्षण देकर उनके कौशल को उन्नत बनाना, कम लागत वाली और पर्यावरण के अनुकूल भवन–निर्माण सामग्री तैयार करने के लिए निर्मति केन्द्रों का संस्थागत नेटवर्क सभी जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित किया जाना चाहिए। यह कार्य शहरी क्षेत्रों की तर्ज पर किया जा सकता है। ग्रामीण आवास के बारे में अनुसंधान और विकास पर अधिक ध्यान देने और अधिक धन खर्च करने की आवश्यकता है।

हमारे यहां भवन–निर्माण शैलियों, सामग्री, प्रौद्योगिकी और डिजाइनों की सांस्कृतिक, कृषि–जलवायु विषयक और क्षेत्रीय विशिष्टताओं को देखते हुए अनुसंधान एवं विकास कार्य भी अनिवार्यतः विकेंद्रित रूप में आगे बढ़ाए जाने चाहिए।

प्रौद्योगिकी, पर्यावास और ऊर्जा संबंधी मुद्दों में बदलाव लाने के लिए 1999–2000 में एक राष्ट्रीय ग्रामीण आवास और पर्यावास मिशन की शुरुआत की गई है। इसका उद्देश्य एक निर्धारित समय–सीमा के भीतर क्षेत्र–विशेष के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास और कम लागत वाले और पर्यावरण के अनुकूल अच्छे मकानों के डिजाइन, सामग्री और प्रौद्योगिकी का पता लगाना है। चूंकि निर्माण के डिजाइन, सामग्री और प्रौद्योगिकी का सरोकार संस्कृति और क्षेत्र–विशेष के साथ होता है अतः अतीत के ज्ञान के आधार पर इनका पता लगाया जाना चाहिए, लिपिबद्ध किया जाना चहिए और बाद में एक क्षेत्रीय सूचना, शिक्षा और संचार नीति के माध्यम से संप्रेषित किया जाना चाहिए है। मिशन के तीन प्रमुख कार्य हैं। प्रौद्योगिकी और सामग्री की आपूर्ति लाइन मजबूत बनाना, ग्रामीण आबादी में जागरूकता पैदा करना और ग्रामीण क्षेत्र के दस्तकारों/कारीगरों के कौशल में सुधार लाना। इससे निर्माण तर्कनीकों, आवास और रख–रखाव पद्धतियों में सुधार आएगा।

वर्तमान में वित्त संस्थानों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में आवास उपलब्ध कराने की सुविधा नहीं के बराबर है। आवास के लिए वित्त की सुविधा बढ़ाने, रणनीति के माध्यम से ग्रामीण आवास कार्यक्रम को सुचारू बनाने और घरेलू तथा बाहरी दोनों ही संसाधनों से पूंजी जुटाने और आवास और पर्यावास के लिए समुचित दृष्टिकोण विकसित करने के लिए शायद आगे चलकर एक अलग एजेंसी की आवश्यकता पड़ेगी। नौवीं पंचवर्षीय योजना में आवास और शहरी विकास निगम–(हडको) की इक्विटी में ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा बढ़ोतरी किया जाना एक उपयोगी अंतरिम उपाय है। अभी तक हडको में ग्रामीण विकास मंत्रालय का इक्विटी योगदान कम था, अतः ग्रामीण क्षेत्रों में आवास के लिए हडको को बाजार से धन जुटाने की मजबूरी थी। हडको द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की सीमा बढ़ाए जाने के लिए एक अल्पावधि उपाय के रूप में ग्रामीण विकास मंत्रालय ने सन् 2001–2002 तक हुडको में अपनी इक्विटी भागीदारी 350 करोड़ रुपये बढ़ाने का फैसला किया है।

कोई भी व्यक्ति आवास निर्माण के लिए ऋण, प्रौद्योगीकी और सामग्री की उपलब्धता के बारे में सोचता है। हम पहले कह चुके हैं कि मौटे तौर पर ये मुद्दे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और उनके समाधान पर इतना ध्यान पहले कभी केन्द्रित नहीं किया गया। इसे देखते हुए कि नीति में परिवर्तन की शुरुआत हो चुकी है, अतः उज्ज्वल भविष्य की कामना की जा सकती है। निःसन्देह इस प्रगतिशील परिवर्तन का असर दो तरफा होना चाहिए। पहला यह कि इस तथ्य को समझ लिया जाना चाहिए कि आवास अपने में अकेला मुद्दा नहीं है। अंतिम लक्ष्य स्थायी मानव–बस्तियों का निर्माण करना है। इससे इस समूची प्रक्रिया से लोगों में मेल–जोल बढ़ना चाहिए।

प्राकृतिक और कृत्रिम वातावरण तथा मानव–जीवन का स्थायी अस्तित्व अन्य बातों के अलावा तब तक सुनिश्चित नहीं किया जा सकता जब तक कि ग्रामीण क्षेत्रों में मानव–बस्तियों को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न, सामाजिक दृष्टि से सक्षम और पर्यावरण के अनुकूल नहीं बनाया जाता। साथ ही देशी ज्ञान–पद्धतियों, विरासत और विविधता का पूरा सम्मान भी जरूरी है। प्राकृतिक पर्यावरण का युक्तिसंगत उपयोग करते हुए ग्रामीण आवासों को मनुष्य का विकास और मानव संसाधनों की संरक्षण करना चाहिए लेकिन साझा स्वामित्व में संसाधनों के तेजी से ह्रास को देखते हुए अनेक समस्याएं हैं। और यही तो चुनौती है कि पतन को रोका जाए और ऐसा माहौल पैदा किया जिसमें पुनर्निर्माण तथा खुशहाली का युग शुरू हो। ❑

अनुवाद : राधेश्याम

भारत में ग्रामीण लड़कियों–महिलाओं की शिक्षा
नीतिगत पहल और भावी निर्देश

उषा नायर

स्वतंत्रता–प्राप्ति के समय देश की दृष्टि से बहुत पिछड़ा था। देश के कुल 23 प्रतिशत और 6 प्रतिशत महिला साक्षर थे। स्वतंत्र होने के बाद देश में इस दिशा में लगातार प्रयासों के फलस्वरूप आज स्थिति में काफी सुधार आया है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 1999 के 53वें चक्र के मुताबिक आज पुरुष साक्षरता दर 73 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी पुरुष और महिला साक्षरता दर में काफी सुधार हुआ है। आज ग्रामीण क्षेत्रों में 43 प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं जबकि पुरुषों के लिए यह दर 56 प्रतिशत है। देश में साक्षरता दर विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता दर बढ़ाने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए पढ़िए इस बारे में जानकारी प्रस्तुत लेख में।

वैसे तो पुरुषों की आधुनिक शिक्षा की शुरुआत 1815 के ईस्ट इंडिया कम्पनी अधिनियम के पारित होने के साथ ही शुरू हो गई थी, लेकिन महिलाओं की शिक्षा को सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियों और स्त्रियों को पर्दे में अलग–थलग रखने की सामाजिक प्रथाओं और राज्य की उपेक्षा के कारण नुकसान उठाना पड़ा। भारत में स्वतंत्रता–प्राप्ति तक तो स्त्रियों की शिक्षा अधिकांशतया निजी प्रयासों पर ही निर्भर थी और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा तो मात्र शहरी इलाकों तक ही सीमित थी। 1947 में 2,18,165 शिक्षण संस्थानों में भर्ती छात्रों की कुल संख्या 1,77,50,263 थी,, जिनमें लड़कियों का प्रतिशत केवल 23.4 था, जिसमें से प्राथमिक स्तर पर प्रतिशत 26.7, माध्यमिक स्तर पर 18, हाई स्कूल स्तर पर 12.8 सामान्य शिक्षा के विश्वविद्यालय और कालेजों में 10.4 तथा व्यावसायिक शिक्षा के कालेज स्तर में 6.6 प्रतिशत लड़कियां थीं। पुरुषों व महिलाओं के अंतर के अलावा प्रणाली में क्षेत्रीय, शहरी, ग्रामीण और समूहों के आधार पर गहरी असमानताएं थीं। स्त्रियों में साक्षरता 6 प्रतिशत थी जबकि पुरुषों में यह दर 23 प्रतिशत थी। (राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा समिति की 1959 की रिपोर्ट)।

वर्तमान में, भारत में चीन के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली है, जिसमें 6,26,737 प्राथमिक, 1,90,166 उच्चतर प्राथमिक, 79,648 हाई स्कूल, 28,487 उच्चतर माध्यमिक स्कूल, 7,494 सामान्य शिक्षा कालेज, 540 इंजीनियरिंग कालेज, 755 मेडिकल कालेज, 818 शिक्षक प्रशिक्षण कालेज, 1,066 पालिटेक्निक, 4,171 आई.टी.आई., 1,319 शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल और 308 विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय महत्व के संस्थान तथा अनुसंधान संस्थान हैं। इसके अलावा, 6–14 वर्ष के आयु समूह के स्कूल न जा पाने वाले बच्चों के लिए 2,90,000 अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र और 15–35 वर्ष के आयु वर्ग के वयस्कों के लिए स्वैच्छिक आधार पर एक व्यापक साक्षरता कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है पहली से पांचवीं तक की कक्षाओं में 11.1 करोड़, छठी से आठवीं कक्षाओं में 4.04 करोड़, नवीं से दसवीं कक्षाओं में 1.85 करोड़ और उच्चतर माध्यमिक संस्थानों में 69.8 लाख छात्र दाखिल हैं। 60 लाख से अधिक छात्र उच्च शिक्षण संस्थानों में पढ़ रहे हैं। लड़कियों का अनुपात प्राथमिक स्तर पर 43.5 प्रतिशत, माध्यमिक स्तर पर 40.5 प्रतिशत, उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 37.8 प्रतिशत और उच्च शिक्षा में 38.8 प्रतिशत (1998–99) है। लेकिन अभी भी प्रणाली में क्षेत्रीय और वर्गीय असमानताएं काफी गहरी हैं। अब ऐसी राष्ट्रीय नीतियां अपनाई जा रही हैं, जिनसे लड़कियों तथा वंचित वर्गों विशेषकर–ग्रामीण और दूर दराज के इलाकों में रहने वाले परिवारों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करना शुरू करें।

महिला शिक्षा के लगातार पिछड़ेपन को ध्यान में रखते हुए महिला शिक्षा पर राष्ट्रीय समिति (1958–59) ने दूरगामी परिणामों वाली 185 सिफारिशें कीं जिनका उद्देश्य महिला शिक्षा को सभी स्तरों पर तथा सभी तरह की महिला शिक्षा को बढ़ावा देना था। इसमें स्कूलों में न पढ़ने वाली लड़कियों व स्त्रियों की शिक्षा भी शामिल थी। इन सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद गठित की गई, जिसने दो महत्वपूर्ण समितियों का गठन किया। लड़कियों की शिक्षा, विशेषकर देहाती इलाकों में लड़कियों की शिक्षा, की उपेक्षा के कारणों का पता लगाना और जन समर्थन जुटाने के उपाय सुझाने के लिए भक्तवत्सल्य समिति बनाई गई। दूसरी समिति, हंसा मेहता समिति ने

* व्याख्या अनिता नूना से साभार प्राप्त सहायता

सामान्य रूप में सहशिक्षा की सिफारिश की, जिसके तहत माध्यमिक स्तर पर लड़कियों के लिए अलग स्कूल तथा प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर लड़कों व लड़कियों दोनों के लिए गृह विज्ञान को एक समान कोर विषय वाले समान पाठ्यक्रम की बात कही गई थी। प्रथम व्यापक शिक्षा आयोग (1964–66) ने लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। इस आयोग ने इन समितियों की सिफारिशों की पुष्टि की। पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में महिलाओं के लिए समान शिक्षा अवसरों पर जोर दिया गया ताकि वे सामाजिक परिवर्तन के माध्यम बन सकें। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति और इसकी कार्य योजना (1992 में संशोधित) पर अमल से शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव आया, जिससे शैक्षणिक असमानताओं को दूर करना एक प्रमुख मुद्दा माना गया और इससे शिक्षा को महिलाओं की समानता और अधिकारिता के लिए काम करने की दिशा मिली। 1992 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति/कार्य योजना में स्पष्ट रूप से गांव में रहने वाली लड़कियों और महिलाओं के शिक्षा की दृष्टि से अत्यंत पिछड़े होने को रेखांकित किया गया और इसे ठीक करने का सुझाव दिया गया। भारत ने 1990 में जोमटीन विश्व सर्वशिक्षा सम्मेलन में सबको शिक्षा सुलभ कराने के प्रति अपनी वचनबद्धता दुहराई, जिसके साथ ही सबको शिक्षा देने के अपने संवैधानिक दायित्व (धारा 45, राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांत) पर फिर से जोर देते हुए दक्षेस बालिका दशक (1991–2000) के मद्देनजर 1988 में ही प्रौढ़ शिक्षा के लिए राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना कर दी। नौंवी पंचवर्षीय योजना में लड़कियों की शिक्षा और महिलाओं की अधिकारिता को राष्ट्रीय विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। पिछले दशक में लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में एक बड़ा अवधारणामूलक बदलाव देखने में आया। महिला शिक्षा में निवेश को अब नैतिक मूल्य के बजाय विकास की जरूरत के रूप में देखा जा रहा है।

साक्षरता परिदृश्य

1991 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता दर पुरुषों के 64.21 प्रतिशत की तुलना में 39.29 प्रतिशत थी। ग्रामीण शहरी और विभिन्न समूहों के बीच अंतर काफी गहरे हैं। स्वंय महिलाओं में ही ग्रामीण–शहरी खाई काफी चौड़ी है। शहरी महिला साक्षरता दर ग्रामीण महिलाओं की तुलना में दुगुनी है। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाएं तो सबसे पीछे हैं।

साक्षरता दर में असमानताएं – 1991

शहरी पुरुष	81.09 प्रतिशत
शहरी महिलाएं	64.05 प्रतिशत
ग्रामीण पुरुष	57.87 प्रतिशत
ग्रामीण महिलाएं	30.62 प्रतिशत
अनुसूचित जाति पुरुष	49.91 प्रतिशत
अनुसूचित जाति महिलाएं	23.76 प्रतिशत
अनुसूचित जनजाति पुरुष	40.65 प्रतिशत
अनुसूचित जनजाति महिलाएं	18.19 प्रतिशत

27 जिलों में ग्रामीण महिला साक्षरता दर 10 प्रतिशत से कम थी, 107 जिलों में 10–20 प्रतिशत और 99 जिलों में 20–30 प्रतिशत थी (भारत की जनगणना 1991)। 32 करोड़ निरक्षरों में 19.6 करोड़ (61 प्रतिशत) महिलाएं थीं। जनसंख्या में महिलाओं की संख्या 3.2 करोड़ कम थी। लेकिन निरक्षरों में महिलाओं की संख्या 7.2 करोड़ अधिक थी। (लिंग अनुपात न केवल महिलाओं के प्रतिकूल था बल्कि यह लगातार और प्रतिकूल होता जा रहा है। 1991 में प्रति 1000 पुरुषों पर 927 महिलाएं थीं।)

ऐसा लगता है कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र और 1980 में स्थापित राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में निवेश और प्रयासों सम्पूर्ण साक्षरता अभियान के फायदे सामने आने शुरू हो गए हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 1999 के 53वें चक्र से संकेत मिलता है कि 1990 के दशक में साक्षरता के क्षेत्र में भारत को सफलता मिली है। 1991 की समग्र साक्षरता दर 52 प्रतिशत से बढ़कर 1997 में 62 प्रतिशत पहुंच गई है। 1991–97 के दौरान महिला साक्षरता की दर में 11 प्रतिशत वृद्धि हुई है, जबकि पुरुष साक्षरता दर में 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। महिला साक्षरता दर पुरुष साक्षरता दर से भी काफी कम है।

महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत है, जबकि पुरुष साक्षरता दर 73 प्रतिशत है।

ग्रामीण साक्षरता दर तेजी से बढ़ी है

ग्रामीण और शहरी साक्षरता स्तरों का अंतर भी कम हुआ है। 1991 में ग्रामीण व शहरी प्रतिशत का अंतर 28.4 प्रतिशत था, ग्रामीण साक्षरता दर 44.7 और शहरी साक्षरता दर 73.1 थी। 1997 में ग्रामीण साक्षरता दर 56 प्रतिशत स्तर तक पहुंच गई है जो शहरी साक्षरता दर के 80 प्रतिशत से 24 प्रतिशत कम है। 1991 और 1997 के बीच के इन छह वर्षों में ग्रामीण साक्षरता में 11.3 प्रतिशत अंकों में वृद्धि हुई जो शहरी जनसंख्या के लिए 6.9 प्रतिशत अंकों की वृद्धि से लगभग दुगनी है। राज्यवार विश्लेषण से पता चलता है कि साक्षरता दरों में सर्वाधिक वृद्धि पूर्वोत्तर

प्राथमिक स्तर पर ही नहीं माध्यमिक और उच्च शिक्षा में भी लड़कियों का प्रतिशत काफी बढ़ रहा है

राज्यों में हुई है ओर अब साक्षरता चार्ट में मिजोरम (95 प्रतिशत) ने केरल (93 प्रतिशत) को पछाड़ दिया है तथा असम में यह वृद्धि 22 प्रतिशत की शानदार वृद्धि रही। वहां पर 1991 की 53 प्रतिशत की तुलना में यह दर 1997 में 75 प्रतिशत हो गई। प्रसन्नता की बात यह है कि बिमारू राज्यों (बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश) भी इस दिशा में पीछे नहीं हैं। 1991–97 के दौरान बिहार में 10.5 प्रतिशत वृद्धि देखी गई, मध्य प्रदेश में 11.8, उत्तर प्रदेश में 14.4 प्रतिशत और राजस्थान में 16.5 प्रतिशत वृद्धि हुई।

तालिका–1

1951 से 1997 तक भारत में स्त्री–पुरुष और ग्रामीण शहरी दृष्टि से साक्षरता दर

वर्ष	व्यक्ति			पुरुष			महिलाएं		
	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी
1951	16.7	–	–	24.9	–	–	7.9	–	–
1961	24.0	19.0	47.0	34.4	29.1	57.5	13.0	8.5	34.5
1971	29.5	23.7	52.5	39.5	33.8	61.3	18.7	13.2	42.1
1981	36.1	29.6	57.2	46.7	40.6	65.6	24.8	18.0	47.7
1991	52.2	44.7	73.1	64.1	57.9	81.1	39.3	30.6	64.1
1997	62.0	56.0	80.0	73.0	68.0	88.0	50.0	43.0	72.0

स्रोतः भारत की जनगणना महापंजीयक का कार्यालय और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन का 53वां चक्र

शैक्षिक भागीदारी

महिलाओं के मामलों में विशेष बल देने से प्रारंभिक स्कूलों में लड़कियों की संख्या काफी बढ़ी है, लेकिन देश में भर्ती में लड़कियों का अनुपात और कुल दाखिलों में लड़कियों का हिस्सा, सम्पूर्णता की दृष्टि से औसत से कम है और माध्यमिक स्तर पर तो यह अंतर काफी गहरा दिखता है। ग्रामीण और शहरी इलाकों में और आम जनसंख्या के मुकाबले अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़ी जातियों तथा कुछ अल्पसंख्यक समुदायों की महिलाओं में भी असमानताएं गहरी हैं।

शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी में वृद्धि

लगातार प्रयासों की वजह से पिछले पांच दशकों में प्रारंभिक शिक्षा स्तर पर लड़कियों के दाखिलों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

- प्राथमिक स्तर पर लड़कियों की संख्या 1950–51 की 53.8 लाख से बढ़कर 1998–99 में 483 लाख हो गई है।
- माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की संख्या 1950–51 की 5.3 लाख से बढ़कर 1998–99 में 163 लाख हो गई है।
- 1990–91 और 1998–99 के दौरान ईएफए कार्यक्रमों में बालिकाओं पर दिए गए विशेष बल और राज्य की उचित नीतियों के कारण लड़कियों की शिक्षा की स्थिति में तेजी से आया सुधार स्पष्ट दिखता है। निश्चित तौर पर इस अवधि में प्राथमिक स्तर पर लड़कियों के दाखिले में 78.5 लाख की वृद्धि हुई है, जबकि लड़कों के मामले में यह संख्या 57.5 लाख हैं उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कियों और लड़कों के लिए यह वृद्धि क्रमशः 38.1 लाख और 25.2 लाख है। दरअसल, प्राथमिक स्तर पर लड़कों की तुलना में लड़कियों की दाखिला वृद्धि दर काफी छोटे आधार से शुरू करके और नियोजित विकास के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा

देने के राज्य के अनवरत प्रयासों की वजह से अधिक रही है।

- आजादी के बाद से लड़कियों के प्रतिशत में शिक्षा के सभी स्तरों पर उत्तरोत्तर वृद्धि दृष्टिगत हुई है। 1950–51 और 1998–99 के दौरान प्राथमिक स्तर पर दाखिल बच्चों में लड़कियों का हिस्सा 28 प्रतिशत से बढ़कर 44 प्रतिशत और मिडिल स्तर पर 16 प्रतिशत से बढ़कर 41 प्रतिशत, माध्यमिक उच्चतर माध्यमिक पर 13.3 प्रतिशत से बढ़कर 37.8 प्रतिशत तथा उच्च शिक्षा के स्तर पर 10 प्रतिशत से बढ़कर 38.8 प्रतिशत हो गया।
- नवीनतम आंकड़ों के अनुसार स्कूल छोड़ने वालों की दर में लड़कों–लड़कियों का अंतर काफी कम है। अंतर केवल इतना है कि प्राथमिक शिक्षा पूरी करने में लड़कियों को लड़कों के 7 वर्ष की तुलना में 8 वर्ष या कुछ अधिक समय लगता है। (मानव संसाधन विकास मंत्रालय 2000)

गांव की लड़कियों का पिछड़ापन

- महिलाओं में ग्रामीण–शहरी दृष्टि से अंतर बहुत अधिक है। यह मानकर कि हमारी 75 प्रतिशत जनसंख्या अभी भी गांवों में रहती है प्राथमिक स्तर पर दाखिला लेने वाली 73 प्रतिशत, छठी से आठवीं कक्षाओं में 58 प्रतिशत, नवीं–दसवीं में 49 प्रतिशत और ग्यारहवीं–बारहवीं कक्षाओं में 29 प्रतिशत लड़कियां ग्रामीण इलाकों की हैं।
- प्राथमिक स्तर पर 110 लाख शहरी लड़कियों की तुलना में 310 लाख देहाती लड़कियों ने दाखिला लिया है। छठी से आठवीं कक्षाओं में 80 लाख देहाती और 60 लाख शहरी लड़कियां भर्ती हैं, नवीं–दसवीं कक्षाओं में 27 लाख ग्रामीण और 28 लाख शहरी और ग्यारहवीं बारहवीं कक्षाओं में 17.7 लाख शहरी लड़कियों की तुलना में केवल 7.2 लाख ग्रामीण लड़कियां दाखिल हैं (छठे अखिल भारतीय शैक्षणिक सर्वेक्षण, 1998 के आधार पर नायर 2000)।
- और फिर उच्चतर स्तरों की ओर बढ़ते हुए गांवों की लड़कियों की शैक्षणिक भागीदारी उत्तरोत्तर घटती जाती है। पहली कक्षाओं में प्रत्येक 100 लड़कियों में से पांचवीं में केवल 45, आठवीं में केवल 23, दसवीं में केवल 13 और बारहवीं में 3 लड़कियां ही रह जाती हैं। इसके विपरीत शहरी लड़कियों में यह प्रतिशत पांचवीं में 74, आठवीं में 63, दसवीं में 46 और बारहवीं में 23 है।
- गांव की लड़कियों के लिए शिक्षा सुविधाओं की सुलभता समस्या बनी हुई है। आबादी वाले 5,87,247 गांवों के लिए (1991 जनगणना) ग्रामीण इलाकों में केवल 5,11,849 प्राथमिक स्कूल, 1,27,863 उच्च प्राथमिक स्कूल, 4,82,62 माध्यमिक स्कूल तथा केवल 11,642 उच्चतर माध्यमिक स्कूल थे। इस प्रकार औसतन 13 प्रतिशत गांवों में प्राथमिक शिक्षा सुविधाएं नहीं थीं, 78 प्रतिशत में उच्च प्राथमिक शिक्षा सुविधाएं मौजूद नहीं थीं, 92 प्रतिशत में कोई माध्यमिक स्कूल नहीं था और 98 प्रतिशत गांवों में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नहीं थे। (छठा अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण)। 300 या अधिक जनसंख्या की 30,000 से अधिक बस्तियां भी जिनके एक किलोमीटर के दायरे में, 30 सितम्बर 1993 की स्थिति के अनुसार कोई भी प्राथमिक स्कूल नहीं था। हमारी तीन चौथाई जनसंख्या गांवों में रहती है, लेकिन शहरी इलाकों के 11,882 उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 11,642 स्कूल हैं। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शहरी लड़के–लड़कियों की संख्या, ग्रामीण क्षेत्रों के लड़के–लड़कियों की तुलना में कहीं अधिक है।
- इस प्रकार देहाती लड़कियां क्वालीफाइंग राउंड से बाहर हो जाती हैं तथा गांव के दायरे से बाहर नहीं निकल पाती हैं। शिक्षक प्रशिक्षण सहित तकनीकी और पेशेवर शिक्षा के दूसरे व तीसरे स्तरों में प्रवेश लेने के लिए 10 से बारह वर्ष की सामान्य शिक्षा जरूरी होती है और इसी कारण ग्रामीण इलाकों में शिक्षिकाओं की कमी हमेशा बनी रहती है। लड़कियों की निजी सुरक्षा के बारे में माता–पिता की चिंता की वजह से लड़कों की अपेक्षा लड़कियां घर से बाहर कम निकलती हैं और इसलिए राजस्व गांव या उसकी उप इकाइयों या बस्तियों में औसतन प्रति गांव की बस्तियां उपलब्ध शिक्षा सुविधाओं का ही लाभ उठा पाती हैं। उदाहरण के लिए राजस्थान और मध्य प्रदेश में एक राजस्व गांव, अक्सर कई किलोमीटर क्षेत्र में फैला होता है और यही स्थिति पहाड़ी व वन क्षेत्रों की दूसरी जगहों पर भी रहती है, और इनमें अक्सर ऊंची जातियों की बस्तियों और अनुसूचित जातियों व जन जातियों के इलाकों के हिसाब से भौगोलिक व सामाजिक दूरी बनी रहती है। समृद्ध ऊंची जाति वाले केन्द्र में होते हैं और वंचित वर्ग के लोग गांव की सीमाओं पर रहते हैं और स्कूल आमतौर पर गांव के बीचों–बीच होता है। कभी–कभी तो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के माता–पिताओं को, उत्तरी मैदानी इलाकों के कुछ हिस्सों में अपने बच्चों को स्कूल न भेजने के लिए कहा जाता है (डीपीईपी लिंग भेद अध्ययन, 1993–94)।
- गांव की लड़कियों के शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ेपन का कारण ग्रामीण इलाकों का अपेक्षाकृत कम विकसित होना है। आने–जाने के सुविधाजनक व सुरक्षित साधनों, पीने के पानी, सस्ते ईंधन, साफ–सफाई और स्वास्थ्य व शिक्षा ढांचे के विकास के अभाव से लड़कियों की शिक्षा प्रभावित होती है। छोटे गांवों में और दूर–दराज के छितरी जनसंख्या वाले इलाकों में तो समस्या और भी गंभीर है। लड़के–लड़की में भेदभाव और ग्रामीण गरीबी, दोनों मिलकर बालिकाओं का बोझ और बढ़ा देते हैं, क्योंकि परिवारों में उनकी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष आमदनी और कामकाज की जरूरत होती है, जबकि छोटे बालकों पर कोई पाबंदी नहीं होती और इतना ही नहीं उनको लाड़ प्यार भी दिया जाता है, क्योंकि वे भावी कमेरे जो समझे जाते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षिकाओं की कमी को शिक्षा में, विशेषकर मिडिल तथा आगे के स्तरों पर लड़कियों की पढ़ाई में एक रुकावट माना जाता है। छठे अखिल

भारतीय शैक्षणिक सर्वेक्षण से प्राप्त अंतिम आंकड़ों के अनुसार गांवों में जहां शिक्षिकाओं की मांग सबसे अधिक होती है, स्थिति कोई उत्साहजनक नहीं है। प्राथमिक स्तर पर शिक्षिकाओं का प्रतिशत 24 है, मिडिल स्तर पर 25 प्रतिशत, माध्यमिक स्तर पर 23 प्रतिशत और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर केवल 18.5 प्रतिशत है, जबकि शहरी इलाकों में ये आंकड़े क्रमशः 60 प्रतिशत, 60 प्रतिशत, 54 प्रतिशत और 41 प्रतिशत हैं (छठा अखिल भारतीय शैक्षणिक सर्वेक्षण, एनसीईआरटी, 1998)।

- **स्कूल न जाने वाली लड़कियों की शिक्षाः** 10 से 18 वर्ष के आयु वर्ग की लड़कियों का एक बड़ा हिस्सा स्कूल नहीं जाता है। सर्वसुलभ प्रारंभिक शिक्षा के समबन्ध में 1997–98 में 6–14 वर्ष के आयु वर्ग में स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या 4 करोड़ से भी अधिक थी, जिनमें से 67 प्रतिशत लड़कियां थीं। स्पष्ट रूप से कुल मिलाकर 2 करोड़ 70 लाख लड़कियां स्कूल नहीं जा रही थीं, 1 करोड़ 10 लाख प्राथमिक स्पर पर तथा 1 करोड़ 60 लाख उच्च प्राथमिक स्तर पर और इनमें से अधिकांश गांवों में रहने वाली लड़कियां थीं।

महत्वपूर्ण क्षेत्र

मुद्दे

- दूर–दराज के ग्रामीण इलाकों में और वंचित वर्गों तक प्राथमिक शिक्षा सुविधाएं पहुंचाना। माध्यमिक स्तर पर सामान्य, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा सुविधाओं तक पहुंचने में स्त्रियों के लिए एक बड़ी बाधा निरक्षरता और प्राथमिक व मिडिल स्तर के स्कूलों की कमी है। गांवों में रहने वाली लड़कियों के मामले में तो यह और भी गंभीर है, क्योंकि गांव में मिडिल स्कूलों की सुविधा नहीं है।
- अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों तथा शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े अल्पसंख्यक समुदायों की लड़कियों के दाखिले और उनकी पढ़ाई जारी रखे जाने पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है।
- 10–18 वर्ष के आयु वर्ग में स्कूल न जाने वाली लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान देने की जरूरत है।
- राज्य और राज्य सहायता प्राप्त स्कूलों में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे स्कूलों में स्तर को उन्नत बनाना।
- शिक्षा को अधिक सार्थक व प्रासंगिक बनाने के लिए पाठ्यक्रम में सुधार।
- शिक्षकों और शिक्षकों के प्रशिक्षकों को सेवापूर्व व सेवा के दौरान शिक्षण, पाठ्य पुस्तक लेखकों और पाठ्य पुस्तक प्रकाशन बोर्डों, सीबीएसई और राज्य शिक्षा बोर्डों में स्त्रियों को लगाने पर जोर देना चाहिए।
- माध्यमिक स्तर पर विज्ञान और गणित विषयों में लड़कियों की भागीदारी न होने का कारण स्कूलों में इन विषयों की पढ़ाई की सुविधाओं का अभाव है। विज्ञान शिक्षकों की कमी भी एक बड़ी बाधा है। विज्ञान व गणित में उचित आधार न होने के कारण भी लड़कियां प्रौद्योगिकी, अर्ध–चिकित्सा, व्यापार, वाणिज्य और कृषि से सम्बद्ध गैर–पारम्परिक पाठ्यक्रमों में नहीं जा पातीं। ग्रामीण इलाकों में यह समस्या अत्यन्त गंभीर है।
- हुनर सिखाने वाले अधिकांश प्रशिक्षण संस्थान शहरी इलाकों में हैं। ग्रामीण इलाकों में गैर–पारम्परिक दक्षता पाठ्यक्रमों की सुविधाओं का सामान्य अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसर हैं। शहरी इलाकों में सरकारी और निजी नियोक्ता भी महिला कर्मचारियों को काम पर रखना पसंद नहीं करते।
- दक्षता विकास कार्यक्रम आत्म–विश्वास तथा अपने काम धंधे के लिए जरूरी ऋण सम्बन्धी जानकारी, कच्चे माल की खरीद, विपणन, वित्तीय प्रबंध, परियोजना बनाने व प्रबंध आदि की अन्य पूरक दक्षताओं का विकास नहीं करते।

प्रस्तावित उपाय

- एक सुविचारित राष्ट्रीय कार्ययोजना बनाई जाए, जिसमें स्पष्ट समय–सीमा रखी जाए, संसाधनों का आवंटन हो और सम्बद्ध सरकारी एजेंसियों को स्पष्ट जिम्मेदारियां सौंपी जाएं तथा गैर सरकारी संगठनों को भी शामिल किया जाए।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय, योजना आयोग और राष्ट्रीय एजेंसियों में स्त्री/बालिका शिक्षा प्रकोष्ठों/कार्यालयों तथा अंतर मंत्रालयों विभाग संचालन निगरानी समूह की स्थापना के बारे में कार्य योजना की संशोधित सिफारिशों को लागू नहीं किया गया है।
- अंतर विभागीय समन्वय व एकजुट प्रयासों की प्रत्यक्ष जरूरत है।
- मिडिल तक शिक्षा प्राप्त ग्रामीण लड़कियों के लिए चार साल का आवासीय पाठ्यक्रम तैयार किया जाए, ताकि सभी तीन शाखाओं (भाषाओं, विज्ञान और गणित तथा सामाजिक विज्ञान) से प्रारंभिक स्तर की शिक्षिकाएं तैयार की जा सकें। कुछ राज्य उच्चतर माध्यमिक स्तर पर सामान्य शिक्षा के लिए स्कूलों में पेशेवर पाठ्यक्रमों में बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण भी प्रदान कर रहे हैं। ग्रामीण इलाकों में शिक्षिकाओं की कमी को पूरा करने के लिए छात्रवृत्तियों/नर्सरी/आवासीय पाठ्यक्रमों की एक योजना बनाने की जरूरत है।
- पंचायती राज संस्थाओं के साथ शिक्षा विभाग का कार्यकारी सम्बन्ध विकसित करना जरूरी है।
- ग्रामीण–शहरी आंकड़ों को नियमित रूप से एकत्र करना जरूरी है।
- छोटी अछूती बस्तियों में वरिष्ठ/अंशकालिक/वैकल्पिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए। सभी प्राथमिक स्कूलों को मिडिल स्कूलों में बदल दिया जाए। लड़कियां सामान्यतया गांव की सीमाओं को पार नहीं करतीं। मिडिल स्कूल के लिए 3 किमी. की दूरी कभी–कभी इलाके या व्यक्तिगत सुरक्षा की वजह से रुकावट बन जाती है। और फिर, हमें व्यावहारिक भी होना पड़ेगा, क्योंकि अगर सभी प्राथमिक स्कूलों में पहली कक्षा में प्रवेश लेने वाले बच्चे अंत तक बने रहते हैं और लगभग सभी पांचवीं कक्षा उत्तीर्ण कर लेते हैं। तब कार्यरत वर्तमान मिडिल स्कूलों में सभी प्राथमिक

स्कूलों के उत्तीर्ण छात्रों को जगह मिल ही नहीं सकेगी। इसके अलावा इस. बात के भी काफी साक्ष्य हैं कि जहां कहीं भी गांव के भीतर पूरे मिडिल/माध्यामिक या उच्चतर माध्यमिक स्कूल हैं, वहां लड़कियां उच्च कक्षाओं में शिक्षा जारी रखती हैं।

- पहला काम यह किया जाए कि सभी गांवों के लिए बारहमासी पक्की सड़कें बनाई जाएं तथा सभी प्रारंभिक स्कूली छात्रों (कक्षा से एक से आठ) तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर तक लड़कियों को स्कूल के लिए मुफ्त बस सेवा प्रदान की जाए। बीस लाख अतिरिक्त कक्षाएं, पक्की सड़कें और विभिन्न मौजूदा प्रोत्साहन योजनाओं पर किए जाने वाले खर्च के समायोजन पर गौर किया जाना चाहिए। हम लोगों को अपने कुएं खुद खोदने में मदद करें, ताकि वे पानी की दो–चार बूंदों के निकलने की आस में आई योजनाओं के अंत तक बची–खुची प्रगति के भरोसे न बैठे रहें।
- वनों, मरुस्थलों, पहाड़ों जैसी छितरी जनसंख्या जैसी विकट परिस्थितियों में लड़कियों के लिए प्राथमिक आवासीय स्कूलों/आश्रमशालाओं की जरूरत है। किसी भी बड़े नीतिगत निर्णय से पहले मध्य प्रदेश टी डब्लू डी ब्लाकों और लोक जुम्बिश के सफल अनुभवों का अध्ययन किया जाना चाहिए।
- शिक्षा तथा लड़कियों व स्त्रियों के प्रशिक्षण के लिए ब्लाक आधारित सम्पूर्ण अंतर–क्षेत्रीय नीति अपनाई जानी चाहिए।
- लेकिन सबसे महत्व की बात यह है कि हरेक ब्लाक में बालिका विद्या पीठ खोली जाएं, जिनमें ब्लाक के गांवों की लड़कियों के लिए बारहवीं कक्षा तक आवासीय सुविधाओं वाली सामान्य तथा व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था हो। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में आधुनिक व्यवसायों तथा बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण, अर्ध चिकित्सीय स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं, नर्सरी शिक्षकों, ग्राम सेविकाओं आदि जैसे प्रशिक्षणों को शामिल किया जाना चाहिए। प्रत्येक ब्लाक में उच्चतर माध्यमिक स्कूल से जुड़ा एक बालिका छात्रावास हो, जिसमें छठी कक्षा और आगे की कम से कम 200 लड़कियों को रखा जा सके।
- मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा की समस्या की ओर से हमें आंखें नहीं मूंद लेनी चाहिए। जनगणना से हमें उनके आयु वार दाखिले/भागीदारी की दरों के आंकड़े मिलने चाहिए, ताकि शैक्षणिक व आर्थिक दृष्टि से वंचित वर्गों के लिए विशेष रणनीतियां तैयार की जा सकें। मुस्लिम बाहुल्य ब्लाकों के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय के क्षेत्र–प्रधान कार्यक्रम को और मजबूत तथा विस्तारित करना होगा।
- दूरस्थ शिक्षा की संभावनाएं असीम हैं और दुर्गम इलाकों में रहने वाली लड़कियों तथा स्कूल न जाने वाली लड़कियों की शिक्षा के लिए इस माध्यम का भरपूर लाभ उठाया जा सकता है।
- अपनी बेटी अपना धन (हरियाणा), राजस्थान की राज्य लक्ष्मी और सरवती योजनाओं तथा अन्य योजनाओं को मजबूत बनाने और दीर्घावधि प्रभावों के लिए शिक्षा से जोड़ने की जरूरत है।
- जहां कहीं भी पंचायतें थोड़ा–बहुत काम कर रही हैं (धन का मजबूत आधार न होने पर भी) तथा उन्होंने कोई स्कूल अपना लिया है, वहां सामान्य तौर पर बच्चों के लिए और विशेष रूप से लड़कियों के लिए शिक्षा में सुधार हुआ है। पंचायती राज संस्थाओं के अधिक सहयोग और भागीदारी की जरूरत है।
- गांव की महिलाओं को रोजमर्रा के जीवन की समस्याओं में अपने बेटे–बेटियों की शिक्षा के बारे में भी चिंता करनी पड़ती हैं। महिला मंडलों/समूहों को मजबूत करने और ग्रामीण विकास तथा महिला अधिकारिता के बड़े माध्यम के रूप में विकसित करने की जरूरत है।
- गांव की लड़कियों के लिए स्वास्थ्य, रोजगार आदि में औपचारिक और अनौपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण का विस्तृत कार्यक्रम सफल बनाने के लिए मिडिल और माध्यमिक स्तर के स्कूलों में गांव की लड़कियों के दाखिले की दरों में सुधार करने की जरूरत है।
- लड़कियों के सभी स्कूलों में विज्ञान और गणित पढ़ाने की व्यवस्था को मजबूत करने का राष्ट्रीय कार्यक्रम और लड़कियों के स्कूलों में विज्ञान और गणित की शिक्षकों की कमी को दूर करने की योजना शुरू की जाए। ग्रामीण क्षेत्रों के माध्यमिक और तकनीकी शिक्षा को लड़कियों की पहुंच के दायरे के भीतर लाने पर विशेष बल दिया जाए।
- प्रोत्साहनों के प्रभावों, संस्थागत ढांचों/प्रदाय प्रणालियों के प्रभावों के अध्ययन की जरूरत है। इन प्रभावों में ई.एम.ए परियोजनाएं, मुक्त शिक्षा और वैकल्पिक स्कूली व्यवस्था शामिल है।
- गैर–पारम्परिक पाठ्यक्रमों में लड़कियों की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए तकनीकी और प्रबंधकीय संस्थानों में लड़कियों के वास्ते पर्याप्त छात्रावास सुविधाओं की जरूरत है।
- लड़कियों के लिए मार्गदर्शन व परामर्श के प्रावधान पर भी विशेष ध्यान देना जरूरी है।
- नीतियों का संसाधन आवंटनों, उचित संस्थागत ढांचे और विशेषज्ञता के साथ तालमेल होना जरूरी है।
- स्त्री शिक्षा और प्रशिक्षण पर पर्याप्त ध्यान तथा लिंगभेद के प्रति संवेदनशील नियोजन करने की जरूरत।
- गांवों में गरीबी और ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसरों की कमी पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों तरह से ध्यान देने की जरूरत है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, साफ–सफाई और संचार की बुनियादी सेवाओं की पहुंच का दायरा बढ़ाने की जरूरत है। रोजगार उत्पन्न करने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए ईमानदारी से प्रयास करने की जरूरत है, जिसके लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उपयोग तथा ग्रामीण उद्योगों और सेवाओं की स्थापना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में सम्बद्ध तकनीकी प्रशिक्षण संस्थानों और कार्यक्रमों को शुरू करने की आवश्यकता है। ❑

अनुवाद : एच.के. वर्मा

ग्राम विद्युतीकरण : एक लेखा जोखा

राम सुन्दर शुक्ल*

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भारत की आर्थिक–सामाजिक विकास यात्रा 1947 में शुरू हुई थी। विदेशी शासन से आजाद होने के बाद भारत ने गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और पिछड़ेपन से मुक्ति पाने के प्रयास प्रारंभ कर दिए थे। तब से सामान्य जन–जीवन के आर्थिक–सामाजिक कायाकल्प के लिए विभिन्न क्षेत्रों में हमारी कोशिशें जारी रहीं। आधी सदी से ज्यादा यानी 53 वर्ष बीत चुके हैं। स्वाधीनता की 54वीं जयंती के शुभ अवसर पर यह आकलन करना एक उपयोगी काम होगा कि अन्य क्षेत्रों की तरह गांवों में बिजली पहुंचाने की दिशा में हमारी उपलब्धियां कितनी सफल, सार्थक और उद्देश्यपूर्ण रहीं।

बिजली बुनियादी जरूरत

आर्थिक विकास के लिए बिजली एक बुनियादी जरूरत बन गई है। अर्थ व्यवस्था की करीब–करीब सभी गतिविधियों के लिए बिजली प्रभावी उत्प्रेरक है। ग्राम विकास में भी बिजली का खास योगदान होता है। संचार व परिवहन सुविधाओं, प्रारंभिक शिक्षा, पेयजल और स्वास्थ्य सेवाओं जैसी अन्य बुनियादी सुविधाओं की तरह बिजली आर्थिक विकास की गति तेज करने वाला महत्वपूर्ण घटक है। ग्रामीण उद्यमों, कृषि तथा कृषि आधारित धंधों और परंपरागत हस्तशिल्प में लगे ग्रामीण व्यावसायिकों और ग्रामीण उद्योगों की उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने में इसकी कारगर भूमिका है। इसीलिए विकास योजनाएं बनाते समय महसूस किया गया कि ग्रामीण जन–जीवन में परिवर्तन लाने और ग्रामवासियों के रहन–सहन के स्तर में सुधार करने के लिए देश के सभी गांवों का जल्दी से जल्दी विद्युतीकरण किया जाना बहुत जरूरी है। इसे ध्यान में रखते हुए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में ग्राम विद्युतीकरण, मकानों के विद्युतीकरण, सिंचाई नलकूपों के ऊर्जायन और ग्रामीण उद्योगों को बिजली के कनेक्शन देने पर बराबर ध्यान दिया जाने लगा और हर योजना में इसका महत्व बढ़ता गया।

* उप मुख्याधिकारी, रूरल इलेक्ट्रीफिकेशन कारपो.

सुनियोजित समारंभ

ग्राम विद्युतीकरण एक सुनियोजित कार्यक्रम के रूप में 1951 में शुरू किया गया। वस्तुतः इसका स्वरूप और आकार विद्युत विकास कार्यक्रम के अनुरूप तय किया जाता रहा क्योंकि बिजली उपलब्ध होने पर ही वितरण तंत्र का विस्तार करना व्यावहारिक और उपयोगी होता है। विद्युत विकास भारी पूंजी–निवेश की जरूरत वाला उद्योग है। अतः इसका विकास संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। इन्हीं कारणों से शुरुआती दौर में ग्राम विद्युतीकरण की प्रगति धीमी रही और देश में गांवों की लगभग पौने छः लाख से अधिक की कुल संख्या को देखते हुए विद्युतीकृत गांवों की संख्या काफी कम रही।

उत्तरोत्तर प्रगति

स्वतंत्रता–प्राप्ति के समय सिर्फ 1500 गांवों में बिजली थी। ये अधिकांशतः शहरों और कस्बों के आस–पास वाले गांव थे। उस समय मात्र 6,500 सिंचाई नलकूप बिजली से चलते थे। योजनाबद्ध तरीके से ग्राम विद्युतीकरण शुरू किए जाने के समय तक 3,061 गांवों (कुल के 0.52 प्रतिशत) का विद्युतीकरण हो पाया था और 21,008 सिंचाई नलकूपों को कनेक्शन दिए जा सके थे जो कुल संभावित क्षमता के 0.17 प्रतिशत के बराबर थे। पहली पंचवर्षीय योजनावधि की समाप्ति (1951–56) तक विद्युतीकृत गांवों की संख्या 7,294 और ऊर्जायित पंपसेटों की संख्या 56,508 तक पहुंच पाई। द्वितीय योजनावधि (1986–61) में अपेक्षाकृत अधिक काम हुआ। इस दौरान लगभग 14,500 नए गांवों को बिजली पहुंचाई गई और 1.43 लाख नए नलकूपों को कनेक्शन दिए गए जिन्हें मिलाकर विद्युतीकृत गांवों की कुल संख्या 21,750 (3.77 प्रतिशत) और ऊर्जायित नलकूपों की संख्या 1.99 लाख (1.66 प्रतिशत) तक जा पहुंची। इससे अगली पंचवर्षीय योजना (1961–66) में इस दिशा में काम काज और बेहतर रहा और ग्राम विद्युतीकरण के आंकड़े 45,144 गांव (7.80 प्रतिशत) और ऊर्जायित नलकूपों की संख्या 5.13 लाख (4.27 प्रतिशत) तक पहुंची। 1966 1969 से तक वार्षिक योजनाओं का दौर रहा जिनके बाद 1969 तक कुल मिलाकर 73,732 (12.80 प्रतिशत) गांव विद्युतीकृत किए जा चुके थे और 10.89 लाख नलकूप (9 प्रतिशत) ऊर्जायित किए जा चुके थे।

बिजली पहुंचने से गांवों में हरियाली लहलहा उठी है

आर ई सी की स्थापना

1969 को ग्राम विद्युतीकरण के इतिहास में एक ऐतिहासिक वर्ष के रूप में याद किया जाएगा जब ग्राम विद्युतीकरण गतिविधियों को सुनियोजित ढंग से वित्त पोषित करने और आगे बढ़ाने के लिए रूरल इलेक्ट्रीफिकेशन कारपोरेशन (आर ई सी) की स्थापना की गई। इससे पहले साठ के दशक में देश व्यापी सूखा पड़ा जिससे वर्षा आधारित कृषि में लगे किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ा और अनाज की पैदावार में गिरावट आने से भुखमरी से बचने के लिए भारी मात्रा में खाद्यान्न का आयात करना पड़ा। सूखे की पुनरावृत्ति रोकने और सिंचाई साधनों का त्वरित विकास करने के उद्देश्य से ग्राम विद्युतीकरण का सारा जोर बिजली के उत्पादक उपयोग और खास तौर से सिंचाई नलकूपों के ऊर्जायन पर दिया जाने लगा। आर ई सी ने क्षेत्र विकास का दृष्टिकोण अपनाते हुए ग्राम विद्युतीकरण को क्षेत्र की अन्य विकास परियोजनाओं से समन्वित करने के लिए बेहतर तालमेल के प्रयास किए। इसके अच्छे नतीजे सामने आए।

रफ्तार तेज

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–74) के दौरान ग्राम विद्युतीकरण की रफ्तार में तेजी आई। इस योजना के दौरान लगभग 83 हजार गांव विद्युतीकृत और 13 लाख से अधिक नलकूप ऊर्जायित किए गए। इस अभूतपूर्व प्रगति में आर ई सी परियोजनाओं का प्रमुख योगदान रहा। इसके साथ ही योजनावधि की समाप्ति तक विद्युतीकृत गांवों की संख्या 1,56,729 (27.20 प्रतिशत) और ऊर्जायित नलकूपों की संख्या 24 लाख से अधिक (20.20 प्रतिशत) हो गईं। पांचवीं योजनावधि (1974–78) में भी यह रफ्तार कायम रही। इसकी समाप्ति तक 2,16,863 गांव (37.45 प्रतिशत) विद्युतीकृत और करीब 33 लाख (27.50 प्रतिशत) नलकूप ऊर्जायित किए जा चुके थे। 1978–80 में भी अच्छी प्रगति हुई जब करीब 33,000 नए गांवों का विद्युतीकरण हुआ और लगभग पौने सात लाख सिंचाई नलकूपों को कनेक्शन जारी किए गए। 1980 से शुरू छठी पंचवर्षीय योजना को ग्राम विद्युतीकरण का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस दौरान पांच वर्षों में अपेक्षाकृत सबसे अधिक लगभग 1 लाख 20 हजार गांवों को बिजली पंहुचाई गई और करीब साढ़े 17 लाख नलकूप ऊर्जायित किए गए। इसके साथ ही देश में ग्राम विद्युतीकरण के स्तर में आशातीत वृद्धि हुई। तब तक कुल के 64 प्रतिशत 3,70,332 गांव विद्युतीकृत किए जा चुके थे और 57 लाख नलकूप ऊर्जायित किए जा चुके थे जो देश में अधिकतम संभावित क्षमता के 48 प्रतिशत के बराबर था।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में भी विद्युतीकरण में तेजी बनी रही। इस दौरान (1985–90) एक लाख से अधिक गांव विद्युतीकृत और साढ़े 26 लाख नलकूप ऊर्जायित किए। उन्हें

छठी पंचवर्षीय योजना को ग्राम विद्युतीकरण का स्वर्ण युग कहा जा सकता है। इस दौरान पांच वर्षों में अपेक्षाकृत सबसे अधिक लगभग 1 लाख 20 हजार गांवों को बिजली पंहुचाई गई और करीब साढ़े 17 लाख नलकूप ऊर्जायित किए गए।

मिला कर 1990 तक 81 प्रतिशत से अधिक गांव विद्युतीकृत किए जा चुके थे और कुल संभावित क्षमता के 57.6 प्रतिशत का उपयोग करते हुए 83.5 लाख नलकूपों को बिजली के कनेक्शन जारी किए जा चुके थे। इसके बाद फिर वार्षिक योजनाओं का संक्षित दौर आया जब 1990 से 1992 के बीच 16,332 गांवों का विद्युतीकरण और 10.32 लाख नलकूपों का ऊर्जायम संपन्न किया गया। आठवीं योजना (1992–97) से ग्राम विद्युतीकारण की रफ्तार में अपेक्षाकृत गिरावट का दौर शुरू हो गया। इस अवधि में 18,500 गांवों को बिजली पहुंचाई गई। हालांकि 1991 की जनगणना के आंकड़ों से समायोजन के बाद यह संख्या और भी कम हो गई। लगभग 21.80 लाख नलकूपों को कनेक्शन दिए गए। तब तक देश में ग्राम विद्युतीकरण और पंपसेट ऊर्जायन का स्तर क्रमशः 85 प्रतिशत और 80 प्रतिशत पंहुच चुका था। इस योजना की एक खास बात यह रही कि इस दौरान ग्रामीण मकानों के विद्युतीकरण पर भी समुचित ध्यान दिया गया।

नौवीं योजना (1997–2002) के अंतर्गत 30,000 गांवों को बिजली पहुंचाने और 20 लाख सिंचाई नलकूपों को कनेक्शन देने की रूपरेखा बनाई गई है। एक लाख दलित बस्तियों को विद्युतीकृत करने का कार्यक्रम है। एक करोड़ 50 लाख ग्रामीण मकानों को कनेक्शन देने का भी लक्ष्य है। इन पर काम चल रहा है और सूचनाओं के अनुसार 8,200 से अधिक गांवों का विद्युतीकरण किया जा चुका है और 9 लाख से अधिक नलकूपों को कनेक्शन दिए गए हैं।

वर्तमान स्थिति

विकास की पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान अच्छी प्रगति के बावजूद अभी तक शत–प्रतिशत ग्राम विद्युतीकरण का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका है। देश के कुल 5.87 लाख में से 5.07 लाख गांव विद्युतीकृत किए जा चुके हैं जो 86 प्रतिशत से अधिक हैं। औसतन हर दस के पीछे करीब नौ गांवों में बिजली उपलब्ध है। 26 में से 13 राज्य लगभग सभी गांवों में बिजली उपलब्ध कराने में सफल हुए हैं। विभिन्न राज्यों में एक करोड़ 24 लाख सिंचाई नलकूपों को बिजली के कनेक्शन दिए जा चुके हैं और इनके जरिए अधिकतम संभावित क्षमता (196 लाख) के 64 प्रतिशत का उपयोग किया जा रहा है। औसतन 10 ग्रामीण परिवारों के पीछे एक के पास इस समय बिजली से चलने वाला नलकूप है जो सिंचाई का सबसे आसान, किफायती और भरोसेमंद साधन है। इन नलकूपों के कारण किसान अपनी फसलों की सिंचाई के लिए अब वर्षा पर निर्भर नहीं हैं। समय पर सिंचाई के कारण इन नलकूपों ने देश को अनाज उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर बनने में सहायता की है। अनाज उत्पादन बढ़ने के अलावा नकदी और व्यापारिक फसलें उगाने में मदद मिली है जिससे ग्रामवासियों की आमदनी, अधिक रोजगार, प्रचार घरेलू सुख सुविधाओं तथा इलेक्ट्रानिक प्रचार माध्यमों की उपलब्धता के कारण उनके रहन–सहन के स्तर में सुधार हुआ है, आर्थिक–सामाजिक परिवर्तनों की रफ्तार तेज हुई है और उनमें राजनीतिक–सामाजिक जागरूकता बढ़ी है।

ग्रामीण मकानों में बिजली

1991 की जनगणना के अनुसार देश के गांवों में 11 करोड़ 16 लाख मकान हैं। जिनमें से सिर्फ 3 करोड़ 41 लाख (31 प्रतिशत) में बिजली के कनेक्शन हैं। इस मामले में विभिन्न राज्यों की स्थिति में भारी विषमता है। हिमाचल

प्रदेश की हालत सबसे अच्छी है जहां 86 प्रतिशत ग्रामीण मकान विद्युतीकृत किए जा चुके हैं वहीं बिहार में बिजली वाले ग्रामीण मकानों का औसत मात्र 6 प्रतिशत है। गोवा (82 प्रतिशत), गुजरात (56 प्रतिशत), हरियाणा (63 प्रतिशत), कर्नाटक (42 प्रतिशत), केरल (42 प्रतिशत), महाराष्ट्र (58 प्रतिशत), मणिपुर (42 प्रतिशत), मिजोरम (35 प्रतिशत), नगालैंड (47 प्रतिशत), पंजाब (77 प्रतिशत), तमिलनाडु (44 प्रतिशत) जैसे राज्य राष्ट्रीय औसत से ऊपर रह कर बेहतर स्थिति में हैं वहीं बाकी अधिकांश राज्य इस मामले में काफी पीछे हैं।

कुटीर ज्योति

भारत सरकार द्वारा ग्रामवासी निर्धनों के मकानों में बिजली की रोशनी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से यह कार्यक्रम 1988–89 में शुरू किया गया था। इसका कार्यान्वयन आर ई सी के जरिए किया जा रहा है। इसके अंतर्गत गरीबी की रेखा मे नीचे रहने वाले अर्थात बहुत गरीबी में गुजर बसर करने वाले ग्रामवासियों की झोपड़ियों में एक बत्ती कनेक्शन दिया जाता है। मकान के अंदर वायरिंग आदि का खर्च भी दिया जाता है। इस उद्देश्य से मीटर सहित कनेक्शन के लिए प्रति कनेक्शन 1000 रुपये और बिना मीटर के प्रति कनेक्शन 800 रुपये संबद्ध राज्य बिजली बोर्ड को अनुदान के तौर पर दिया जाता है। ग्रामवासी गरीबों के लिए विभिन्न राज्यों में अब तक ऐसे 38.55 लाख कनेक्शन दिए जा चुके हैं।

कुटीर ज्योति उन लोगों को बिजली की सुविधा देने का कार्यक्रम है जो खुद यह सुविधा प्राप्त करने का खर्च नहीं उठा सकते। देश में ग्रामीण निर्धनों को बहुत बडी संख्या को देखते हुए इसे और व्यापक बनाए जाने की जरूरत है। लेकिन संसाधनों की कमी और लागू करने वाली संस्थाओं (राज्य बिजली बोर्डों) की खराब आर्थिक स्थिति को देखते हुए इसका विस्तार करना मुश्किल लग रहा है।

आर ई सी का योगदान

देश में सुनियोजित ढंग से ग्राम विद्युतीकरण परियोजना को वित्त पोषित करके कार्यान्वित कराने का श्रेय आर ई सी को जाता है। पिछले 30 वर्षों से प्रमुख विकास परक वित्तीय संस्था ने देश के विभिन्न राज्यों में फैली 36,000 से अधिक विद्युतीकरण परियोजनाओं के लिए लगभग 223 अरब रुपये से ज्यादा वित्तीय सहायता मंजूर की है। देश के कुल विद्युतीकृत गांवों और ऊर्जायित पंपसेटों का 60 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा आर ई सी परियोजनाओं का योगदान है। आर ई सी पिछड़े, कम विकसित और जनजातीय क्षेत्रों को प्राथमिकता देता है।

बचा हुआ काम

विद्युतीकरण के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद अभी काफी काम बाकी है। लगभग 80,000 गांवों में अभी तक बिजली उपलब्ध नहीं है। अधिकांशतः ये गांव बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के दुर्गम और दूर–दराज के क्षेत्रों में स्थित हैं। कठिन भौगोलिक स्थिति और ग्रिड से दूर होने के कारण इनके विद्युतीकरण पर अपेक्षाकृत बहुत अधिक खर्च आने का अनुमान है। इन्हीं राज्यों में ग्रामीण मकानों के विद्युतीकरण का प्रतिशत बहुत कम है तथा भूजल की उपलब्धता के कारण अधिक नलकूप ऊर्जायित किए जाने की गुंजाइश और जरूरत है।

देश के कुल 5.87 लाख में से 5.07 लाख गांव विद्युतीकृत किए जा चुके हैं जो 86 प्रतिशत से अधिक हैं। औसतन हर दस के पीछे करीब नौ गांवों में बिजली उपलब्ध है। 26 में से 13 राज्य लगभग सभी गांवों में बिजली उपलब्ध कराने में सफल हुए हैं।

समस्याएं

संसाधनों की कमी और संबद्ध राज्य बिजली बोर्ड़ों की खस्ता आर्थिक स्थिति, विद्युतीकरण कार्यक्रम का लाभकारी न होना और राज्य सरकारों द्वारा इसके लिए जरूरी सब्सिडी न देना इस कार्यक्रम की मुख्य समस्याए हैं। ग्रामीण विद्युत वितरण तंत्र की अपर्याप्तता और अकुशलता, लाइन लासेस की काफी ऊंची दर और बिजली की कमी अन्य कठिनाइयां हैं। मुख्य गांवों से लगी दलित बस्तियां हैं जिनका विद्युतीकरण अत्यंत श्रमसाध्य और खर्चीला काम है। गांव के लोग गरीबी के कारण कनेक्शन नहीं ले पाते जिससे बिजली की मांग नहीं बढ़ती और सारा प्रयास घाटे का सौदा साबित होता है तथा उद्देश्य पूरा नहीं होता।

आर्थिक सुधारों के कार्यान्वयन और बिजली क्षेत्र के निजीकरण के कारण ग्राम विद्युतीकरण कार्यक्रम के लिए नई मुश्किलें पैदा हो गई हैं। अत्यधिक पूंजी निवेश की जरूरत और इस कार्यक्रम के आर्थिक रूप से अलाभकारी होने के कारण निजी क्षेत्र के उद्यमी ग्राम विद्युतीकरण का काम हाथ में लेने को इच्छुक नहीं हैं। राज्य बिजली बोर्डों के स्थान पर गठित किए जा.रहे नए संगठन (राज्य विद्युत वितरण निगम आदि) भी व्यापारिक दरों पर उधार ली गई राशि को घाटे के विद्युतीकरण कार्यक्रम पर लगाने को तैयार नहीं हैं। अनेक राज्य बिजली बोर्ड या उन्हें भंग करके उनके स्थान पर गठित निगम पहले उधार ली गई रकम नहीं लौटा पा रहे हैं जिससे उन्हें रियायती दरों पर ऋण सहायता मिलनी बंद हो गई है। वित्त पोषक संस्थाए भी मुश्किलों का सामना कर रही हैं।

जन सामान्य को लाभ

क्या विद्युतीकरण के लाभ ग्रामवासियों तक पहुंचे? क्या इस कार्यक्रम से ग्रामीणजन समान रूप से लाभान्वित हुए? निश्चय ही इन सवालों का जबाब 'हां' है। किसी विद्युतीकृत गांव के निवासियों ने अपने प्रयास, पहल और परिश्रम से काफी हद तक इससे लाभ उठाया या किन्हीं ने किसी कारणवश उतना लाभ न उठाया हो लेकिन यह तय है विद्युतीकरण के लाभ सभी ग्रामवासियों ने किसी न किसी रूप में महसूस किए हैं। इस उद्देश्य – विशेष से कई अध्ययन कराए गए जिनसे इन निष्कर्षों की पुष्टि हुई है। बिजली से चलने वाले नलकूपों के कारण सिंचाई क्षमता और पैदावार में वृद्धि हुई है। लोगों को अतिरिक्त रोजगार मिला। उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों आदि का प्रयोग संभव हुआ। इन सबके मिले–जुले परिणामस्वरूप अधिक उपज, अधिक आय और बेहतर रहन–संहन संभव हुआ। बिजली के इस्तेमाल से ग्रामीण उद्योगों की उत्पादकता और उत्पादन में भी वृद्धि हुई और उनके आधुनिकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ। मकानों में बिजली के इस्तेमाल से

ग्राम विद्युतीकरण की राज्यवार स्थिति

क्र.सं.	राज्य		आबादी वाले गांवों की कुल संख्या (1991 की जनगणना)	मार्च, 2000 के अंत तक विद्युतीकृत गांव * (अनंतिम)	प्रतिशत	मार्च, 2000 को शेष अविद्युतीकृत गांव
1.	आंध्र प्रदेश	#	26586	26565	100	0
2.	अरुणाचल प्रदेश		3649	2147	59	1502
3.	असम		24685	19019	77	5666
4.	बिहार		67513	47869	71	19644
5.	गोवा	#	360	360	100	0
6.	गुजरात	#	18028	17940	100	0
7.	हरियाणा	#	6759	6759	100	0
8.	हिमाचल प्रदेश		16997	16844	99	153
9.	जम्मू एवं कश्मीर		6477	6315	97	162
10.	कर्नाटक	@	27066	26682	99	97
11.	केरल	#	1384	1384	100	0
12.	मध्य प्रदेश		71526	68346	95	3180
13.	महाराष्ट्र	#	40412	40412	100	0
14.	मणिपुर		2182	2001	91	181
15.	मेघालय		5484	2510	46	2974
16.	मिजोरम		698	691	99	7
17.	नगालैंड		1216	1163	96	53
18.	उड़ीसा		46989	35190	75	11799
19.	पंजाब	#	12428	12428	100	0
20.	राजस्थान		37889	35477	93	2412
21.	सिक्किम	#	447	405	100	0
22.	राजस्थान	#	15822	15822	100	0
23.	त्रिपुरा		855	810	95	45
24.	उत्तर प्रदेश		112803	89117	79	23686
25.	पश्चिम बंगाल		37910	29574	78	8336
	जोड़		**586165**	**505830**	**86**	**79897**
	संघ राज्य क्षेत्र	#	**1093**	**1090**	**100**	**0**
	कुल जोड़		**587258**	**506920**	**86**	**79897**

#पूर्णतः विद्युतीकृत, शेष गांवों का विद्युतीकरण व्यवहार्य नहीं (@) 287 गांवों का विद्युतीकरण व्यवहार्य नहीं है (*) स्रोतः– ग्राम विद्युतीकरण पर केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण के आंकड़े (4/2000)

पंपसेट ऊर्जायन की राज्यवार स्थिति

क्र.सं.	राज्य	सिंचाई पंपसेटों की अधिकतम संभावित क्षमता $	31.03.2000 के अंत तक अधिकतम संभावित क्षमता का उपयोग (अनंतिम) *	31.03.2000 उपयोग के लिए बची अधिकतम संभावित क्षमता
1.	आंध्र प्रदेश	1981000	1901323	79677
2.	अरुणाचल प्रदेश	1200	0	1200
3.	असम	254000	3675	250325
4.	बिहार	1352200	272391	1079809
5.	गोवा	7800	6658	1142
6.	गुजरात	779800	670422	109378
7.	हरियाणा	470800	411022	59778
8.	हिमाचल प्रदेश	14200	5762	8438
9.	जम्मू एवं कश्मीर	67200	5621	61579
10.	कर्नाटक	1357000	1176375	180625
11.	केरल	435600	373862	61738
12.	मध्य प्रदेश	2773600	1298108	1475492
13.	महाराष्ट्र	2449800	2264943	184857
14.	मणिपुर	37600	45	37555
15.	मेघालय	14200	65	14135
16.	मिजोरम	–	0	–
17.	नगालैंड	10000	176	9824
18.	उड़ीसा	1214000	74526	1139474
19.	पंजाब	751000	755141	–
20.	राजस्थान	630600	613061	17539
21.	सिक्किम	5000	–	5000
22.	राजस्थान	1662600	1679301	
23.	त्रिपुरा	14800	1885	12915
24.	उत्तर प्रदेश	2610000	817673	1792327
25.	पश्चिम बंगाल	650000	109291	540709
	उप जोड़	**19544000**	**12441326**	**7123516**
	संघ राज्य क्षेत्र	50000	37877	12123
	कुल जोड़	**19594000**	**12479203**	**7135639**

(#) मिजोरम राज्य की संभावित क्षमता शामिल है

($) सिंचाई पंपसेटों के लिए संशोधित संभावित क्षमता अक्तूबर, 95 से प्रभावी है (+) मार्च, 1998

(*) स्रोतः– पंपसेटों के लिए केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण के आंकड़े (4/2000)

लोगों में अधिक चेतना, जागरूकता और आधुनिकता आई। कड़ी मशक्कत के अनेक काम बिजली चालित यंत्रों से होने लगे। गांवों के परिदृश्य और ग्रामवासियों के रहन–सहन में निश्चय ही बदलाव आया है।

सबके लिए बिजली

अब जबकि ग्राम विद्युतीकरण का अधिकांश काम पूरा हो चुका है और सिर्फ 14 प्रतिशत गांव बाकी रह गए हैं, प्रश्न उठता है कि सभी गांवों को बिजली पहंचाने में अभी और कितना समय लगेगा और देशवासियों को बिजली के लाभ कब तक उपलब्ध करा दिए जाएंगे। आर्थिक सुधारों और विद्युत क्षेत्र में तेजी से हो रहे परिवर्तनों के कारण परिस्थितियां एकदम बदल गई हैं जिसके कारण इस सीधे से सवाल का जबाब देना आसान नहीं रहा। देश की अर्थव्यवस्था में हाल के वर्षों में भारी बदलाव आया है। ग्राम विद्युतीकरण का काम करने वाले अधिकांश बिजली बोर्डों की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। छः राज्यों ने बिजली बोर्ड भंग करके उनके स्थान पर निगम गठित कर दिए हैं जो अभी विकास की अवस्था में हैं और व्यापारिक दरों पर ऋण लेकर ग्रम विद्युतीकरण जैसे घाटे के काम शुरू करने की स्थिति में नहीं हैं। इन्हीं परिस्थितियोंवश ग्राम विद्युतीकरण की रफ्तार बहुत कम हो गई है। अस्सी के दशक में जहां एक साल में औसतन 20 हजार गांवों का विद्युतीकरण कर दिया जाता था वहीं अब एक वित्त वर्ष में मुश्किल से तीन हजार गांव विद्युतीकृत हो पाते हैं। संसाधन महंगे हो गए हैं और व्यापारिक रूप से लाभप्रद गतिविधियों पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। प्राथमिकताएं बदल रहीं हैं। ऐसे हालात में शत–प्रतिशत ग्राम विद्युतीकरण का लक्ष्य प्राप्त करने और अमीर–गरीब सभी की मांग पर बिजली उपलब्ध करा सकने की समय–सीमा निर्धारित कर पाना मुश्किल हो रहा है। ऐसा लगता है कि अगर विशेष उपाय न किए गए और परिस्थितियां अनुकूल न हुईं तो सबके लिए बिजली का लक्ष्य पूरा करने में कई दशक लग जाएंगे।

देश के सभी गांवों में सभी ग्रामवसियों को बिजली उपलब्ध कराने के लिए नीति–निधार्रकों को कुछ कठोर और साहसपूर्ण कदम उठाने होंगे। इस काम के लिए एक अनुमान के अनुसार 23,490 करोड़ रुपये की पूंजी लगाए जाने की जरूरत है। इसमें से 5,165 करोड़ रुपये बाकी बचे गांवों के विद्युतीकरण के लिए और 18,325 करोड़ रुपये अविद्युतीकृत 700 लाख से अधिक ग्रामीण मकानों को कनेक्शन देने के लिए चाहिए। इतने बड़े, खर्चीले और जटिल काम को पूरा करने के लिए प्राथमिकताए तय करके सुनियोजित और समयबद्ध तरीके से ग्राम विद्युतीकरण कार्यक्रम को लागू करने की जरूरत है। बुनियादी ढांचे के निर्माण के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में सप्लाई सुनिश्चित करने की जरूरत होगी। इसके लिए उपलब्ध बिजली का एक भाग ग्रामीण सप्लाई के लिए आरक्षित करने की जरूरत पड़ सकती है। वितरण तंत्र के आधुनिकीकरण और अनुरक्षण की भी विशेष व्यवस्था करनी होगी। समाज के कमजोर वर्गों और ग्रामीण निर्धनों को बिजली के लाभ उपलब्ध कराने के लिए खर्चीले उपाय करने होंगे। पूरी व्यवस्था को चुस्त–दुरुस्त बना कर शिकायतों के समयबद्ध निवारण के तौर–तरीके तय करने पड़ेंगे। उपभोक्ताओं को ऊर्जा संरक्षण के लिए प्रेरित करने और दुरुपयोग रोकने के कदम उठाने होंगे। ऐसा करके ही हम सबके लिए गांव–गांव बिजली और खेत–खेत पानी का सपना पूरा कर सकेंगे। ❑

(पृष्ठ 10 का शेष) **भूमंडलीकरण तथा गांवों.....**

बनते जा रहे हैं। धनी देशों के अपार वित्तीय संसाधनों को खपाने में तीसरी दुनिया के मुल्कों की अहम भूमिका है। अब गरीबों को छोटे–छोटे कर्ज देकर उन्हें आमदनी प्राप्त करने के कुछ स्रोत प्रदान कराने में अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी मुनाफे तथा परोपकार दोनों का अच्छा संगम देख रही है। बंगला देश की ग्रामीण बैंक योजना की तर्ज पर गरीबों को छोटी–छोटी राशि का कर्ज देकर जिन्दा रहने के लिए कुछ साधन दिलवाने में बाहरी वित्तीय पूंजी दो तीन बड़े लाभ देख रही है। ये कर्जे लगभग पूरे के पूरे यथासंभव शत–प्रतिशत चुका दिए जाते हैं और इन पर सामान्य ब्याज दर से कुछ अधिक ब्याज की प्रप्ति होती है। गरीबों की विशाल संख्या को देखते हुए विश्व वित्तीय पूंजी के लिए ये लधु ऋण एक विशाल मुनाफेपूर्ण अरबों–खरबों की राशि के निवेश के अवसर प्रस्तुत करते हैं। साथ ही एक पंथ दो काज; गरीबों के प्रति संवेदना तथा उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार का यश भी इस तरह प्राप्त हो जाता है।

इस तरह के ग्रमीण विकास के प्रयासों को बढ़ावा देने वाले यह भूल जाते हैं कि गरीबों को जिन्दा भर रहने के अवसर देने से गरीबी समाप्त नहीं होती है; ऐसा करना मात्र "गरीबी का प्रबंधन" करना या उसके साथ सम्पत्ति और शक्ति के केन्द्रीकरण के सह–अस्तित्व को बरकरार रखना है। जनता को स्वावलम्बी बनाने वाली सामुदायिक संस्थाएं जिनके जरिये कम ब्याज पर दी गई आमदनी तो गरीबों के अपने हाथ मे बनी रहती है और स्थानीय जरूरतों के अनुरूप विकास होता रहता है। यह एक छोटा–सा उदाहरण है जो दिखाता है कि भूमंडलीकरण के मुकाबले लोगों के स्थानीय संसाधनों पर आधारित अपने पैरों पर अपने आप खड़े होने के प्रयास ज्यादा कारगर साबित होते हैं, खास कर राजकीय–सामाजिक समर्थन के संगम से ताकि उनकी सापेक्षिक ताकत में इजाफा हो।

वैसे यदि वैश्वीकरण का रूप गरीब देशों के आपसी गहन और बढ़ते रिश्तों तथा सहयोग का होता तो बात ही कुछ दूसरी होती। ऐसे सब देश मिलकर अपने बाजारों का विस्तार करते और सहकारी प्रयासों से नई और उपयुक्त तकनीकें विकसित करते, स्थानीय, तृणमूल विकास की नींव पर। उनकी आपसी प्रतिपूरकता बढ़ती और समानतापूर्ण आधार पर व्यापार, निवेश आदि होने के कारण इन विदेशी संबंधों से आम जनता को इन लाभों में भागीदारी मिलती। वैश्वीकरण का यह रूप आन्तरिक संसाधनों पर आधारित, स्वपोषित अपेक्षाकृत स्वायत्तपूर्ण होता और अन्य समकक्ष तथा एक–सी स्थिति वाले देशों के साथ बराबरीपूर्ण और उभयपक्षीय लाभकारी संबंधों के आधार पर सबसे पिछली कतार में स्थित गांवों तथा गरीबों के हित की ओर उन्मुख होता। भारत जैसे देशों को ऐसे वैश्वीकरण की तलाश है। ❑

ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों की सम्पूर्ण सम्बद्धता

प्रद्युम्न कुमार जैन* प्रवीर कुमार जैन** नीलम जैन*

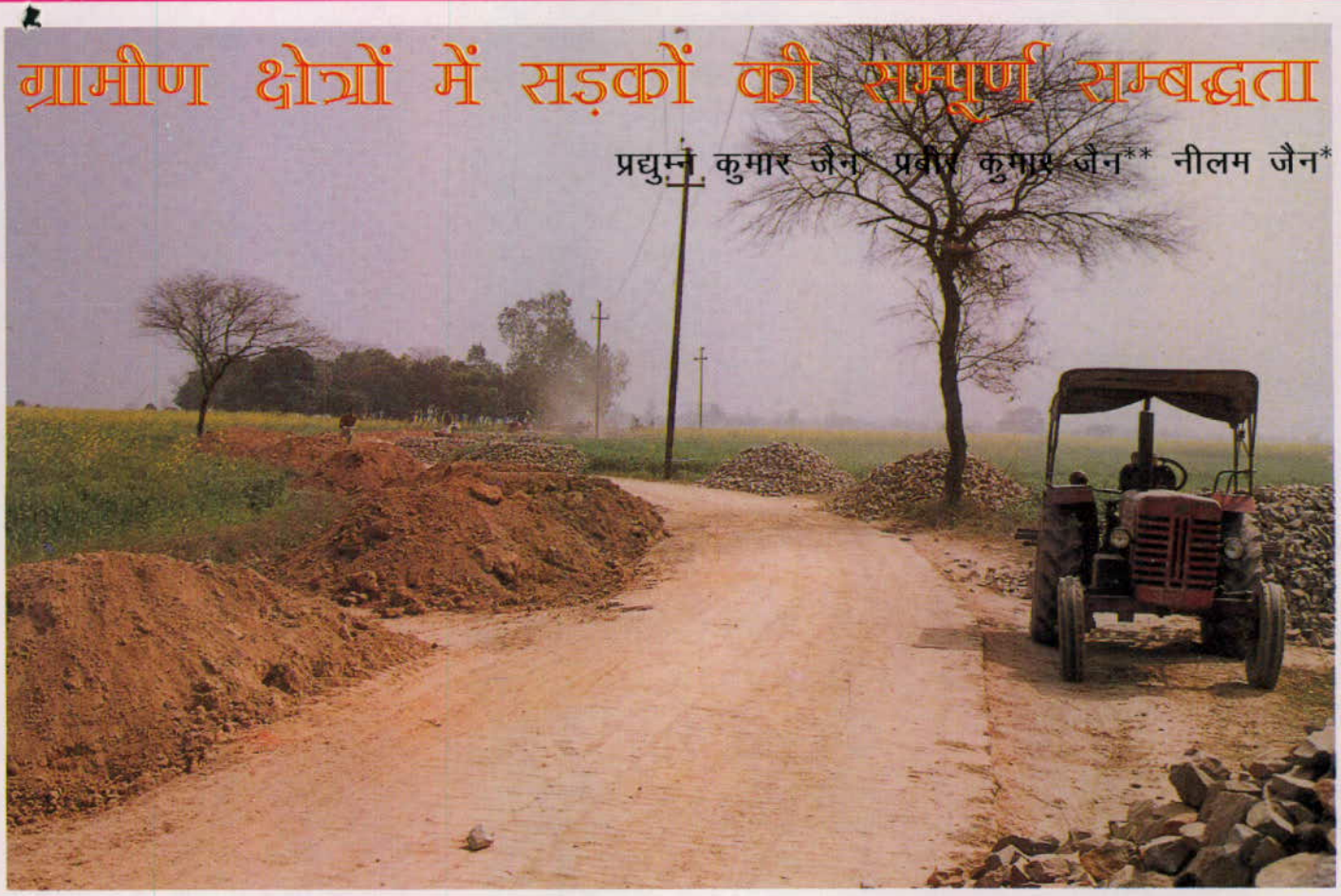

सड़कें ग्रामीण क्षेत्र के विकास के अत्यंत महत्वपूर्ण हैं लेकिन देश में सड़क निर्माण के कार्य को काफी समय तक उचित महत्व नहीं दिया गया इसलिए आज भी देश के 50 प्रतिशत गांवों तक मोटर गाड़ी के चलने योग्य सड़क मार्ग नहीं हैं। नवीं योजना में 1000 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों और 500 से 1000 आबादी वाले 75 प्रतिशत गांवों को सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया है। लेखक का कहना है कि इस लक्ष्य को स्थानीय संस्थाओं के बीच बेहतर तालमेल होने से पूरा किया जा सकेगा।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत की जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत से भी ज्यादा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में, 5.89 लाख गांवों में निवास करता है। किन्तु स्वतंत्रता के 50 वर्षों के बाद भी, देश के इन ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ आवश्यक सुविधाओं, जैसे बारहमासी सड़कों आदि के अभाव के कारण इन ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली आबादी, बाहरी दुनिया से कटी रह जाती है। अच्छी सड़कों के अभाव में गरीब ग्रामीण जनसंख्या आधारभूत आवश्यकताओं से वंचित रह जाती है। सड़क कार्य तथा सड़क यातायात को व्यवसाय शक्ति के रूप में जाना जाता है, विशेषकर हमारे देश में जहां सड़क निर्माण तकनीकी श्रम पर आधारित है। बरसात के मौसम में जब सड़कें वाहनों के चलने योग्य नहीं रहतीं, तब कृषि उत्पादन मंडियों तक और अन्य सामान गांवों तक नहीं पहुंच पाता। बच्चे विद्यालय तथा कालिज में जाने से वंचित रह जाते हैं। उन्हें स्वास्थ्य से सम्बंधित तथा कई अन्य सुविधाएं समय पर नहीं मिल पाती हैं। सड़कों के तंत्र का विस्तार शैक्षिक, स्वास्थ्य एवं सामाजिक सुविधाओं को सुलभ करने के अतिरिक्त कृषि उपज को गांवों से शहरों की ओर ले जाने के लिए अत्यावश्यक है। सड़कें, क्षेत्रीय औद्योगिक विकास, उन्नत श्रमशक्ति व रोजगार में वृद्धि के साथ–साथ जनता का ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कम करती हैं।

भारत सरकार के लिए ग्रामीण जीवन स्तर का उत्थान करना, एक कठिनतम चुनौती है। इसके अन्तर्गत गरीबी उन्मूलन, रोजगार उत्पत्ति, शिक्षा में बढ़ोतरी तथा कृषि का आधुनिकीकरण सम्मिलित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सड़क जालतंत्र अत्यधिक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। कृषि आधारित देश की अर्थव्यवस्था के लिए ग्रामीण सड़कें इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सड़कें आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति, फसल विभिन्नता तथा कृषि उत्पादनों के विपणन की सुविधाएं प्रदान करती हैं जबकि सरकारी योजनाओं में ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों को द्वितीय दर्जे की सुविधा के रूप में गिना जाता रहा

* वैज्ञानिक, ** निदेशक, केंद्रीय सड़क अनुसंधान, नई दिल्ली

है। भारत के लगभग आधे गांवों में अभी तक मोटर यातायात के लिए उपयुक्त सड़कें नहीं हैं। गांवों की निर्भरता अभी भी मुख्यतया कच्ची सड़कों पर है। वर्षाकाल में अधिसंख्य गांव शहरी क्षेत्रों से कट जाते हैं तथा कभी–कभी तो ये आधारभूत सुविधाओं से भी वंचित रह जाते हैं। वर्तमान सड़क जालतंत्र की गुणवत्ता भी खराब स्थिति में है। गांवों की सड़कें पुराने अभिकल्प, कमजोर अवसंरचना, रख–रखाव की कमी तथा बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हैं।

सड़क एक बुनियादी जरूरत है जिससे अन्य विकास के कई कार्यक्रम जुड़ते हैं। सड़क होगी तो ग्रामीण क्षेत्रों का विकास स्वतः ही हो जाएगा। उनके द्वारा उत्पादित अन्न ग्रामीण मंडियों में सरलता से पहुंचाया जा सकता है। उनकी बुनियादी आवश्यकताएं जैसे उर्वरक, कपड़ा, अन्य सामान आदि उन तक सरलता से पहुंच सकता है। बच्चों को विद्यालयों में पहुंचाना या अध्ययन के अन्य साधनों की पहुंच जुटाने की क्षमता या स्वास्थ्य केंद्रों का आसानी से उपलब्ध होना, जो कल तक केवल एक स्वप्न था, एक आम बात बन सकती है। अगर सड़क होगी तो उद्योग भी होंगे, पनपेंगे और शहरी क्षेत्रों के बजाय ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक आएंगे। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों का चहुंमुखी विकास हो सकेगा। किसी भी क्षेत्र के विकास के लिए सड़कों पर खर्च के लिए सबसे पहले प्रावधान किया जाना चाहिए। सड़कों के विकास करने से अन्य सुविधाओं का विकास स्वतः ही हो जाएगा और उनकी विकास योजनाएं भी कार्यरूप में बदली जा सकती हैं। अभी तक इन मूल सिद्धान्तों को नजरअन्दाज कर किए गए प्रयत्न, ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों के विकास के स्थायी चिन्ह पैदा नहीं कर सके। अतः इनके पुनर्निर्माण तथा सुधार के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम की आवश्यकता है। खराब रख–रखाव तथा विकास के अभाव में ग्रामीण सड़क जालतंत्र ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में एक बहुत बड़ी बाधा है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम

पिछले कई दशकों से ग्रामीण क्षेत्रों में मार्गों का नियोजन व विकास भारत सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत किया जाता रहा है। लेकिन इन सभी कार्यक्रमों में लक्ष्य निर्धारण व उनमें प्रयुक्त कार्यशैलियां, कमियों से भरी हुई थीं और नियोजन के निर्धारित सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं थीं। इसी कारण भारत सरकार द्वारा चलाए गए विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों जैसे, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ग्रामीण भूमिहीन रोजगार उत्पादक कार्यक्रम व जवाहर रोजगार योजना तथा ऐसे ही कई अन्य कार्यक्रमों के होते हुए भी आज तक भारत के 5.89 लाख गांवों को पक्की सड़कों से नहीं जोड़ा जा सका है। दुर्भाग्य का विषय है कि इन सभी तदर्थ कार्यक्रमों पर अपार धनराशि व्यय करने के बाद भी सड़कों की सम्पूर्ण सम्बद्धता तो दूर, अभी तक केवल आधे से भी कम गांवों को ही इन सुविधाओं से अच्छी तरह जोड़ा जा सका है। इसलिए सरकारी तंत्र तथा ग्रामीण पंचायतों को इसके प्रति जागरूक व सुदृढ़ बनाया जाए और सड़कों की तकनीकी आवश्यकता को नजरअन्दाज न किया जाए। प्रधानमंत्री द्वारा स्वतंत्रता दिवस पर घोषित 'ग्रामीण सड़क योजना' से इन प्रयासों को बल मिलेगा।

अगर सड़क होगी तो उद्योग भी होंगे, पनपेंगे और शहरी क्षेत्रों के बजाय ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक आएंगे। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों का चहुंमुखी विकास हो सकेगा।

देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती लगभग 17 लाख कि.मी. ग्रामीण सड़क जालतंत्र के विस्तार, आधुनिकीकरण, उत्थान, रख–रखाव तथा प्रबन्ध करने के लिए कोष की भारी कमी रही है। प्रति वर्ष सड़क निर्माण तथा रख–रखाव की लागत में वृद्धि हो रही है। अधिक बजट की प्राप्ति स्थिति को अवश्य ही सरल बना देगी, यह सोचना उचित नहीं होगा। ग्रामीण सड़क संगठनों को अपनी कार्यक्षमता को बढ़ाना होगा ताकि कम से कम संसाधनों से अनुकूलतम कार्य हो सके। ग्रामीण सड़क विकास की वर्तमान प्रक्रिया में भावी सुधार के लिए विस्तृत कार्यक्षेत्र है। नियोजन तकनीकों, अभिकल्प उपागम, निर्माण–विधियों तथा मूलभूत विनिर्देशों के पुनर्विलोकन तथा संशोधन की आवश्यकता है ताकि ग्रामीण सड़क निर्माण, उसका संचालन तथा रख–रखाव लागत के एक वहनीय स्तर पर किया जा सके। सरकार की वर्तमान योजनाएं सामान्यतः गांव अभिगमन के सांख्यिकी लक्ष्यों का उल्लेख करती हैं जैसे 85 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को बारहमासी सड़कों से जोड़ा जाना चाहिए। यद्यपि ये लक्ष्य विशिष्ट दृष्टिगत होते हैं परंतु इनसे ऐसे कोई दिशा–निर्देश नहीं मिलते जिनके अनुसार इनकी प्राप्ति की जा सके। वैकल्पिक उपागमों के माध्यम से लागत में काफी अन्तर आ जाता है। कहीं पर पर भी ऐसे निर्देश नहीं हैं जिनके अनुसार कौन से गांवों को परस्पर जोड़ा जाए। अभिकल्प तथा निर्माण के क्या मापदण्ड होने चाहिए, किस गांव को पहले जोड़ा जाए, इस प्रकार के निर्णयों को स्थानीय स्तर पर निर्णय के लिए छोड़ दिया जाता है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण सड़कों का निर्माण अव्यवस्थित ढंग से किया जाता है तथा कोष का भी सदुपयोग नहीं हो पाता। अधिकतर यह देखने में आया है कि ग्रामीण सड़कों का निर्माण बिना किसी पूर्व तथा भावी योजना के कर दिया जाता है। सड़कों पर जल निकासी का कार्य भी (पुलिया, पुल इत्यादि) अधूरा छोड़ दिया जाता है। यहां तक कि कई बार एक गांव को कई सड़कों से जोड़ दिया जाता है जबकि कई अन्य गांवों को एक भी सड़क से नहीं जोड़ा जाता। इस प्रकार कोष का सदपयोग नहीं हो पाता है। आवश्यकता है कि देश जुट जाए और कम से कम आने वाले दशक में ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे मार्गों का निर्माण किया जाए, जिस पर हर मौसम में वाहन चलाए जा सकें। आवश्यकता है ऐसी सर्वमौसमीय सड़कों के एक जालतंत्र बनाने की, जिसके द्वारा शत–प्रतिशत रूप में गांवों को गांवों से, ग्रामीण व्यापार केन्द्रों से, विद्यालयों से, स्वास्थ्य केन्द्रों से और पक्की सड़कों से जोड़ा जा सके। केवल इन्हीं प्रयत्नों द्वारा, हमारे उन सभी निर्धारित लक्ष्यों को पूरा किया जा सकेगा, जो अब तक केवल एक स्वप्न के रूप में सरकार द्वारा जनता के सामने लाए जाते रहे हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

- ग्रामीण जनता का सामाजिक व आर्थिक उत्थान करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार पैदाकर उसे लोगों को सुलभ करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रह सकने लायक सुविधाएं जुटाकर उन्हें अधिक आकर्षक बनाना।
- ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन को रोकना तथा इस पलायन द्वारा अनैच्छिक अस्थिरता और शहरों में

झोपड़पट्टियों को कम करना।

इन सभी असफलताओं का बारीकी से निरीक्षण करने पर पता चलता है कि हमारे ज्यादातर प्रयत्न और उनकी गुरुत्वता उन दिशाओं पर रही जिनका सड़कों से कुछ लेना देना नहीं था। सरकारी विकास कार्यक्रमों में सड़कों को कभी भी अभियांत्रिक ढांचा नहीं माना गया। सड़क एक अनियोजित रूप में ही रही। न ही सड़कों की संरचना को जरूरत के अनुरूप किया गया और न ही उसके रख–रखाव की परवाह की गई। इन सभी सरकारी योजनाओं में इन सड़कों की मरम्मत का कोई प्रावधान नहीं था और इसी कारण ये जो कच्ची पक्की सड़कें बनाई गई थीं वे कुछ समय बाद ही नष्ट भी हो गई। कई सड़कें तो शायद अब देखने में भी न आएं।

इस समस्या के निदान के लिए केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान ने ग्रामीण सड़क निर्माण एवं रख–रखाव के लिए कृषि उपकरणों का प्रयोग करते हुए उचित प्रौद्योगिकी का विकास किया है। ग्रामीण सड़कों के लिए वैज्ञानिक ढंग से 'मास्टर प्लान' तैयार करके यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सड़क निर्माण पर सरकार जो भी व्यय करेगी उसका समुचित उपयोग होगा। इस जालतंत्र प्रणाली की योजना भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) मंच पर तैयार की जा सकती है तथा इसे कभी भी आवश्यकतानुसार अद्यतन किया जा सकता है। निर्मित नीतियों के निर्धारित उद्देश्य के अनुरूप जांच पड़ताल की जा सकती है।

ग्रामीण सड़कों के नियोजन की स्थिति

हमारे देश में ग्रामीण सड़कों के विकास का दायित्व राज्य सरकारों पर है। केंद्रीय सरकार ग्रामीण सड़कों के नियोजन की नीति निर्धारित करती है तथा इनके विकास हेतु धनराशि का वितरण करती है। राज्य सरकारें इस उपलब्ध धनराशि द्वारा ग्रामीण सड़कों का निर्माण करवाती हैं। तृतीय बीस वर्षीय योजना के अन्तर्गत यह अनुमान लगाया गया था कि वर्ष 2001 तक लगभग 21,89,000 कि. मी. ग्रामीण सड़कों का निर्माण किया जा सकेगा। लेकिन इस योजना के अन्तर्गत इस बात की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सका। आठवीं पंचवर्षीय योजना में 1981 की जनगणना के आधार पर 1,000 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों को जोड़ने की बात कही गई। साथ–साथ पिछड़े व जनजातीय क्षेत्रों की ओर विशेष ध्यान देने की बात कही गई। इस योजना द्वारा अनुमानित आठ लाख ग्रामीण सड़कों का निर्माण किया जा सका। नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण

किस गांव को पंहले जोड़ा जाए, इस प्रकार के निर्णयों को स्थानीय स्तर पर निर्णय के लिए छोड़ दिया जाता है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण सड़कों का निर्माण अव्यवस्थित ढंग से किया जाता है तथा कोष का भी सदुपयोग नहीं हो पाता। अधिकतर यह देखने में आया है कि ग्रामीण सड़कों का निर्माण बिना किसी पूर्व तथा भावी योजना के कर दिया जाता है। सड़कों पर जल निकासी का कार्य भी (पुलिया, पुल इत्यादि) अधूरा छोड़ दिया जाता है। यहां तक कि कई बार एक गांव को कई सड़कों से जोड़ दिया जाता है जबकि कई अन्य गांवों को एक भी सड़क से नहीं जोड़ा जाता।

सड़कों के निर्माण के मापदंडों को एक बार फिर संशोधित किया गया और नए संशोधित लक्ष्य निर्धारित किए गए।

मैदानी क्षेत्रों में

- 1000 से अधिक आबादी वाले शत प्रतिशत गांवों को जोड़ना
- 500 से 1000 के बीच आबादी वाले 75 प्रतिशत गांवों को जोड़ना।

पर्वतीय, जनजातीय, समुद्रतटीय रेगिस्तानी क्षेत्रों में और नदी के समीप क्षेत्रों में

- 500 से अधिक आबादी वाले सभी शत प्रतिशत गांवों को जोड़ना।
- 200 से 500 के बीच आबादी वाले 75 प्रतिशत गांवों को जोड़ना।

इसके साथ–साथ यह भी निर्देश दिया गया कि इन मापदंडों के आधार पर अगर किसी एक जिले में 85 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को सड़कों से न जोड़ा जा सके तो निर्धारित आबादी से कम आबादी वाले गांवों को भी जोड़ने की योजना बनाई जा सकती है। यद्यपि ग्रामीण सड़कों के विकास को सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में सर्वोपरि रखा गया था लेकिन अतिरिक्त रोजगार अवसर बनाने के चक्कर में इन योजनाओं में सड़कों की न्यूनतम अभियांत्रिक विशषताओं को नजरअंदाज किया जाता रहा है। सारणी 1 व 2 द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है। इन सारणियों द्वारा यह दर्शाया गया है कि प्रत्येक राज्य में ग्रामीण सड़कों की कुल लम्बाई क्या है, सड़कों की सतह किस प्रकार की है तथा कितने गांवों को आबादी के हिसाब से जोड़ा जा सका है। लेकिन इन सभी कमियों के बावजूद ग्रामीण सड़कों के विकास में एक अच्छा बदलाव नजर आता है। ग्रामीण सड़कों की कुल लम्बाई के हिसाब से काफी अच्छी प्रगति हुई है और इसको नकारा नहीं जा सकता है। लेकिन इसके बावजूद भी गांवों को गांवों से जोड़ने की प्रक्रिया में कोई खास प्रगति नहीं हो सकी है।

मुख्य समस्याएं

ग्रामीण आबादी को सड़कों से जोड़ने की योजनाओं को कार्यान्वित करने में कई समस्याएं हैं जिनके कारण ग्रामीण आबादी को सड़कों से जोड़ने की स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आ पाया। इन समस्याओं को मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है :

संस्थागत समस्याएं : ग्रामीण सड़कों का निर्माण अधिकतर उन संस्थाओं द्वारा किया जाता रहा है जिनका आपस में कोई ताल–मेल नहीं था। इसी कारण उनकी योजनाएं, संरचना, मापदंड और रख–रखाव की प्रक्रिया भी अलग–अलग तरह की रही। भारतीय सड़क संघ (IRC) भी जिला स्तर पर प्रादेशिक व केन्द्रीय सरकार की नीतियों के अनुरूप मास्टर प्लान बनाने की और अन्य संस्थाओं द्वारा इनको अंगीकार करने की सिफारिश करता है। कुछ राज्यों में सार्वजनिक निर्माण विभाग, 'मास्टर प्लान' तैयार करता है लेकिन अन्य संस्थाएं इनको स्वीकार नहीं करती हैं। पंचायती राज प्रणाली के कारण काफी राज्यों में ग्रामीण सड़कों को ग्रामीण विकास मंडल या ग्रामीण

सारणी – 1

विभिन्न राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों में ग्रामीण सम्बद्धता (1–4–1997 के स्तर पर)

क्रम सं.	राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र	जनसंख्या के आधार पर ग्रामीण सम्बद्धता									कुल राज्यों व केन्द्र शासित क्षेत्रों के लिए		
		1000 से कम			1000–1500 के बीच			1500 से अधिक					
		गांवों की कुल संख्या	सम्बद्ध गांवों की संख्या	सम्बद्ध गांवों का कुल प्रतिशत	गांवों की कुल संख्या	सम्बद्ध गांवों की संख्या	सम्बद्ध गांवों की कुल संख्या	गांवों की कुल संख्या	सम्बद्ध गांवों का कुल प्रतिशत	गांवों की कुल संख्या	सम्बद्ध गांवों की कुल संख्या	सम्बद्ध गांवों का कुल प्रतिशत	सम्बद्ध गांवों का कुल प्रतिशत
1	आंध्र प्रदेश	13,888	4,579	32.97	3,767	2,245	59.60	9,700	9,402	96.93	27,355	16,226	59.32
2	अरुणाचल प्रदेश	3,176	675	21.25	49	42	85.71	32	31	96.88	3,257	748	22.97
3	असम	18,777	1,169	6.23	1,907	1,907	100.00	1,812	1,812	100.00	22,496	4,888	21.73
4	बिहार	53,234	14,906	28.00	6,107	3,375	55.26	8,228	5,984	72.73	67,569	24,265	35.91
5	गोवा	172	172	100.00	100	100	100.00	126	101	80.16	398	373	93.72
6	गुजरात	9,814	8,268	84.25	3,249	3,249	100.00	5,051	5,043	99.84	18,114	16,560	91.42
7	हरियाणा	3,275	3,239	98.90	1,160	1,159	99.91	2,310	2,309	99.96	6,745	6,707	99.44
8	हिमाचल प्रदेश	16,348	7,147	43.72	263	255	96.96	196	196	100.00	16,807	7,598	45.21
9	जम्मू व कश्मीर	5,037	2,913	57.83	611	506	82.82	567	529	93.30	6,215	3,948	63.52
10	कर्नाटक	18,632	6,484	34.80	3,461	2,624	75.82	4,936	4,291	86.93	27,029	13,399	49.57
11	केरल	6	6	100.00	10	10	100.00	1,252	1,252	100.00	1,268	1,268	100.00
12	मध्य प्रेश	63,546	14,109	22.20	4,427	2,966	67.00	2,910	2,745	94.33	70,883	19,820	27.96
13	महाराष्ट्र	25,057	6,487	25.89	5,143	4,987	96.97	6,185	6,175	99.84	36,385	17,649	48.51
14	मणिपुर	1,760	716	40.68	110	103	93.64	167	167	100.00	2,037	986	40.40
15	मेघालय	4,793	2,392	49.91	84	84	100.00	45	45	100.00	4,922	2,521	51.22
16	मिजोरम	395	301	76.20	286	286	100.00	56	56	100.00	737	643	92.76
17	नगालैण्ड	879	798	90.78	132	132	100.00	108	108	100.00	1,119	1,038	92.76
18	उड़ीसा	41,132	12,628	30.70	3,524	3,162	89.73	2,649	2,649	100.00	47,305	18,439	39.98
19	पंजाब	8,842	8,804	99.57	1,557	1,557	100.00	1,689	1,689	100.00	12,088	12,050	99.69
20	राजस्थान	27,598	6,963	25.23	2,407	1,990	82.68	3,300	3,290	99.70	33,305	12,243	36.76
21	सिक्किम	371	263	70.89	48	43	89.58	21	21	100.00	440	327	74.32
22	तमिलनाडु	19,867	12,091	60.86	2,314	2,306	99.65	3,918	3,918	100.00	26,099	18,315	70.18
23	त्रिपुरा	4,183	3,380	80.80	235	235	100.00	300	300	100.00	4,718	3,915	82.98
24	उत्तर प्रदेश	90,271	32,281	35.76	11,396	7,630	66.95	10,899	10,899	97.25	1,12,566	50,510	44.87
25	पं. बगाल	27,864	11,551	41.48	5,500	3,602	65.49	4,928	3,103	62.97	38,274	18,256	47.70
	कुल राज्य	4,58,699	1,73,332	37.79	57,924	45,033	77.74	71,385	65,815	92.20	5,88,008	2,84,180	48.33
	केन्द्र शासित क्षेत्र												
26	अंडमान निकोबार द्वीप समूह	460	223	48.48	16	16	100.00	15	15	100.00	491	254	51.73
27	चंडीगढ़				3	3	100.00	13	13	100.00	16	16	100.00
28	दादर व नगर हवेली	34	30	88.24	13	13	100.00	25	25	100.00	72	68	94.44
29	दमन व द्वीव	11	11	100.00	5	5	100.00	10	10	100.00	26	26	100.00
30	दिल्ली	54	54	100.00	37	37	100.00	123	123	100.00	214	214	100.00
31	लक्ष्यद्वीप												
32	पांडिचेरी	207	207	100.00	31	31	100.00	53	53	100.00	291	291	100.00
	कुल केन्द्र शासति क्षेत्र	786	525	66.79	105	105	100.00	239	239	100.00	1,130	869	76.90
	कुल राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र	4,59,465	1,73,837	37.83	58,029	45,138	77.79	1,43,248	1,32,108	92.22	6,60,742	3,51,083	53.13

स्रोत : योजना आयोग और भारत सड़क सांख्यिकी (1996–97)

सारणी – 2

भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों की सतहीय प्रकार के आधार पर कुल लम्बाई (01–04–1997 के स्तर पर)

(अन्य सार्वजनिक कार्य विभाग, जिला परिषद, ग्राम पंचायत, और पंचायत समिति सड़कों सहित)

क्र. सं.	राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्र	कुल लम्बाई (कि.मी.)	सतहीय सड़कें				असतहीय सड़कें		
			जल बद्धक	डामर सड़कें मकादम सड़कें	सिमेंट सड़कें	कुल लम्बाई	वाहन योग्य (कि.मी.)	वाहन अयोग्य सड़कें	कुल लम्बाई सड़कें(कि.मी.)
1	आंध्र प्रदेश	1,40,686	45,259	34,282	90	79,631	1,735	59,320	61,055
2	अरुणाचल प्रदेश	12,634	1,331	2,295	0	3,626	1,850	7,158	9,008
3	असम	53,787	181	5,124	3	5,308	16,995	31,484	48,479
4	बिहार	60,957	2,459	19,193	11	21,663	4,779	34,515	39,294
5	गोवा	7,321	353	4,343	0	4,696	2,357	268	2,625
6	गुजरात	50,834	12,560	33,405	2	45,967	3,182	1,685	4,867
7	हरियाणा	19,651	0	18,402	0	18,402	464	785	1,249
8	हिमाचल प्रदेश	23,042	5,382	4,318	10	9,710	5,521	7,505	13,026
9	जम्मू व कश्मीर	8,917	2,463	3,098	0	5,561	1,365	1,991	3,356
10	कर्नाटक	1,05163	37,351	32,111	29	69,491	16,234	19,438	35,672
11	केरल	1,26,492	272	32,213	4	32,489	32,092	61,911	94,003
12	मध्य प्रेश	1,31,460	44,237	24,79	14	68,330	59,371	3,759	63,130
13	महाराष्ट्र	2,81,597	1,66,346	49,339	19	2,15,704	37,835	28,058	65,893
14	मणिपुर	8,514	741	1,017	56	1,814	5,068	1,632	6,700
15	मेघालय	5,798	0	2,351	0	2,351	3,447	0	3,447
16	मिजोरम	3,855	0	1,154	0	1,154	2,701	0	2,701
17	नगालैण्ड	17,174	2,220	2,400	0	4,620	11,642	912	12,554
18	उड़ीसा	2,28,810	46,881	22,385	0	69,266	9,878	1,49,666	1,59,544
19	पंजाब	42,757	0	42,757	0	42,757	0	0	0
20	राजस्थान	1,06,341	9,271	48,966	725	58,962	34,005	13,374	47,379
21	सिक्किम	1,502	668	591	0	1,259	243	0	243
22	तमिलनाडु	1,81,897	62,221	58,206	1	1,20428	17,841	43,628	61,469
23	त्रिपुरा	12,752	1,649	2,392	8	4,049	4,306	4,397	8,703
24	उत्तर प्रदेश	1,42,884	18,645	68,929	10	87,584	27,366	27,934	55,300
25	पं. बगाल	42,669	454	21,239	0	21,693	20,976	0	20,976
	केन्द्र शासित क्षेत्र								
26	अंडमान निकोबार द्वीप समूह	1,059	0	1,031	0	1,031	0	28	28
27	चंडीगढ़	1,269	245	522	0	767	351	151	502
28	दादर व नगर हवेली	491	34	457	0	491	0	0	0
29	दमन व द्वीव	101	1	68	1	70	0	0	0
30	दिल्ली	1,224	0	1,224	0	1,224	0	0	0
31	लक्ष्यद्वीप	0	0	0	0		0	0	0
32	पांडिचेरी	1,657	246	900	3	1,149	357	151	508
	सर्वयोग	18,23,295	4,61,470	5,38,791	986	1,00124	3,21,961	4,99,750	8,21,711

स्रोत : योजना आयोग और भारत सड़क सांख्यिकी (1996–97)

अभियांत्रिक विभाग को सुपुर्द कर दिया गया है। यह आशा की जा सकती है कि स्थानीय सहयोग द्वारा ग्रामीण सड़कों के विकास को बल मिलेगा।

भूमि उपार्जन : ग्रामीण सड़कों को ज्यादातर वर्तमान पगडंडी का विस्तार करके बनाया जाता है। कभी–कभी ये पगडंडियां संकरी होती हैं और इन्हें वाहन के चलने योग्य मजबूत बनाने की आवश्यता होती है। इसके लिए आस–पास की भूमि का उपार्जन करना पड़ सकता है।

वित्तीय पहलू : आज के बदलते सामाजिक व आर्थिक परिवेश में ग्रामीण सड़कों को एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में देखा जाना चाहिए क्योंकि ग्रामीण सड़कें स्व वित्तीय नहीं हैं इनके लिए वित्तीय सहायता देना आवश्यक बन जाता है। बजट में ग्रामीण सड़कों के निर्माण एवं रख–रखाव के लिए पर्याप्त वित्तीय प्रावधान नहीं किया जाता रहा है। अधिकतर इसके लिए अन्य वित्तीय साधनों का उपयोग करते हुए काम चलाना पड़ता है जिससे समय–समय पर कठिनाई का अहसास होता है। हमारी सभी ग्रामीण आबादी को सड़कों से जोड़ने के लिए एक अनुमान के अनुसार लगभग 12 लाख कि.मी. ग्रामीण सड़कों का निर्माण करना पड़ेगा जिसके लिए अनुमानतः 1,35,000 करोड़ रुपयों की आवश्यकता पड़ सकती है जिसको जुटाना काफी मुश्किल है। हाल में उपलब्ध 2,500 करोड़ रुपये के उपकर से, जो डीजल पर लगाए अतिरिक्त कर से प्राप्त होता है, कुछ राहत अवश्य मिलेगी लेकिन प्रयत्न जारी रखने होंगे।

नियोजन निर्देश : केन्द्रीय सरकार की बीस वर्षीय सड़क विकास योजनाओं व अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अर्न्तगत विकास योजना निर्देश केवल तदर्थ रूप में मिले जिनका कोई ठोस औचित्य नहीं था। राष्ट्रीय यातायात योजना समिति (NTPC-1980) द्वारा प्रस्तावित जालतंत्र प्रणाली दृष्टिकोण की इन ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में एकदम अवहेलना कर दी गई है। इस अवहेलना के कारण सड़कों का एक अवैज्ञानिक रूप में निर्माण करने से सरकारी उद्देश्यों के प्रति मन में संशय पैदा करता है।

प्रस्तावित कार्यप्रणाली

कई संस्थानों द्वारा यह दावा किया जाता रहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में योजकता बढ़ाने के लिए और योजना बनाने के लिए उनकी कार्य प्रणाली कारगर सिद्ध होगी, लेकिन इनमें से कोई भी अभी तक गांवों की न्यूनतम इकाई के स्तर पर पहुंच कर वास्तविक योजना बनाने में कारगर नहीं हो सका है। प्रस्तावित कार्य प्रणालियां और उन योजनाओं के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले एक सही आधारभूत आंकड़े और सामग्री की पंचायत, जिला परिषद स्तर पर अनुपलब्धता की जटिल समस्या के कारण यह सफल नहीं हो सका है। प्रस्तुत प्रलेख में प्रस्तावित कार्य प्रणाली, पिछली कार्यप्रणालियों से काफी भिन्न है। गांवों का वास्तविक विकास पंचायत, जिला परिषद, सार्वजनिक निर्माण विभाग और ग्रामीण अभियांत्रिक विभाग जो ग्रामीण सड़कों से सही रूप में जुड़े हुए हैं, को सम्मिलित कर के ही सम्भव हो सकता है। ग्रामीण सड़क जालतंत्र के चयन से लेकर भावी आवश्यकता के अनुमान करने तक इन विभागों द्वारा प्रदत्त सहयोग इस तरह की सहभागी ग्रामीण सड़क योजनाओं को बनाने में काफी कारगर सिद्ध होगा और योजनाओं के लिए सही रूप में एक सहभागी वातावरण बनाने में सक्षम होगा। अतः ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं जैसे स्वास्थ्य, शहरी मंडियों में कृषि उपज आदि की पूर्ति हेतु इस प्रस्तावित कार्यप्रणाली की संस्तुति की जा रही है। यह आशा की जा सकती है कि स्थानीय विभाग (पंचायत, जिला परिषद और ग्रामीण अभियांत्रिक विभाग), ग्रामीण विकास मंत्रालय तथा योजना आयोग की सहायता से, ग्रामीण क्षेत्रों की सहभागी योजनाओं की सफलता से भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में एक क्रांति ला सकने में तथा गांव–गांव को जोड़ने में सक्षम हो सकेंगे। ग्रामीण क्षेत्रों का दृश्य पटल बदलने से देश का एक नया ढांचा सामने आएगा जिसमें ग्रामीण लोगों को बराबर का अवसर मिल सकेगा। सर्वप्रथम सबसे छोटे प्रशासनिक इकाई जैसे एक मंडल या एक तहसील या एक ताल्लुका में यह बहुत महत्वपूर्ण है कि इन में आपस में तालमेल बनाया जाए। कार्य करने में पारदर्शिता बढ़ाई जाए।

हमारी सभी ग्रामीण आबादी को सड़कों से जोड़ने के लिए एक अनुमान के अनुसार लगभग 12 लाख कि.मी. ग्रामीण सड़कों का निर्माण करना पड़ेगा जिसके लिए अनुमानतः 1,35,000 करोड़ रुपयों की आवश्यकता पड़ सकती है जिसको जुटाना काफी मुश्किल है। हाल में उपलब्ध 2,500 करोड़ रुपये का उपकर से जो डीजल पर लगाए अतिरिक्त कर से प्राप्त होता है, कुछ राहत अवश्य मिलेगी लेकिन प्रयत्न जारी रखने होंगे।

सर्वप्रथम सर्वे आफ इन्डिया द्वारा प्रमाणित स्थलाकृति मानचित्र की सहायता से नक्शे बनाए जाएं। इन नक्शों पर गांव, सड़क, नदी, रेलवे लाइन आदि को अनुरेखित किया जाए। उसके पश्चात सार्वजनिक निर्माण विभाग और ग्रामीण अभियांत्रिक विभाग में उपलब्ध नक्शों की सहायता से गांवों की अन्य सड़कों को भी उन नक्शों पर अनुरेखित किया जाए। जब ये नक्शे उपलब्ध हो जाएं तो इन पर जिला स्तर पर सड़कों के जालतंत्र का एक 'मास्टर प्लान' बनाया जाए। इस 'मास्टर प्लान' को भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) मंच पर तैयार किया जा सकता है और जिला स्तर पर बने मास्टर प्लान द्वारा तथा बारहमासी सड़कों द्वारा ही ग्रामीण क्षेत्रों में गांवों की शत–प्रतिशत सम्बद्धता सम्भव हो सकेगी। सड़कों के तंत्र का विस्तार, शैक्षिक, स्वास्थ्य, व्यापार, वाणिज्य और सामाजिक सुविधाओं को सुलभ करके उनका उत्थान और विकास हो सकेगा। 'मास्टर प्लान' द्वारा तैयार की गई सड़क प्रणाली से ग्रामीण सड़कों के निर्माण खर्च में भी कटौती की जा सकती है।

निष्कर्ष

ग्रामीण क्षेत्रों की सड़कों के जालतंत्र की विकास योजना बनाने के मूलभूत दर्शन सिद्धांत को ही बदलना होगा। इन योजनाओं के कमजोर और त्रुटिपूर्ण सिद्धांतों के कारण हम आज 50 वर्षों के पश्चात भी केवल पचास प्रतिशत गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ पाए हैं। अभी तक प्रयुक्त किए जाने वाले सड़कों का घनत्व या विभिन्न गांवों की बारहमासी सड़कों से दूरी आदि जैसे मापदंडों

(शेष पृष्ठ 68 पर)

गांवों में पेय जल की व्यवस्था : समस्या और समाधान

नवीन पंत*

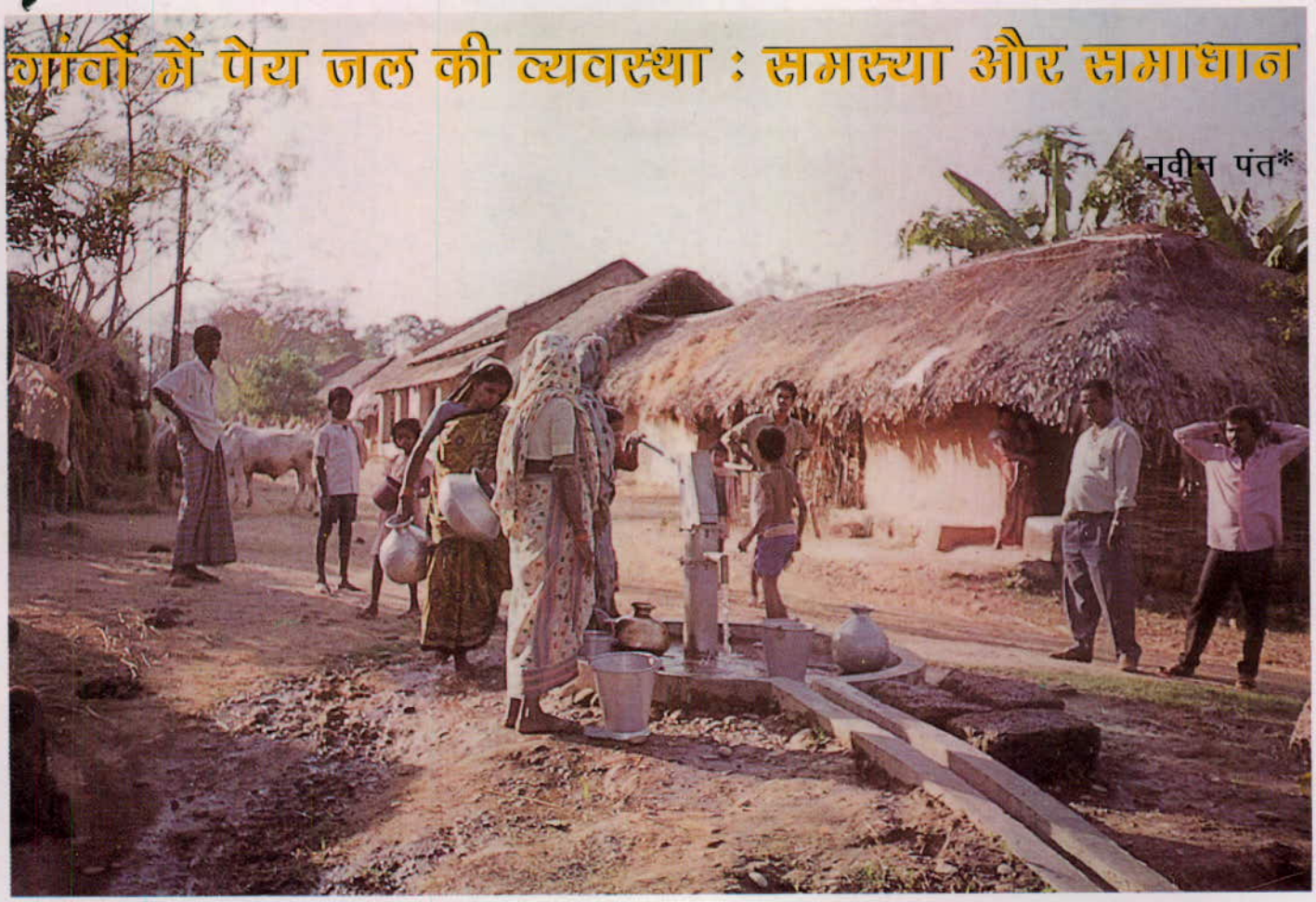

सरकार ने स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से ही देशवासियों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने के प्रयास शुरू कर दिए थे। पहली पंचवर्षीय योजना में इसके लिए 49 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। आठवीं योजना में इस कार्य के लिए 16,711 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। ग्रामीण क्षेत्रों में जल आपूर्ति में राज्यों को सहायता देने के लिए 1972–73 में त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम शुरू किया गया। बाद में इसका नाम राष्ट्रीय जल मिशन रखा गया। 1991 में इसका नाम राजीव गांधी राष्ट्रीय जल मिशन कर दिया गया। अब सरकार ने अपनी नीति बदल दी है। अब जल आपूर्ति परियोजना का डिजाइन तैयार करने से लेकर इसे चालू करने का जिम्मा ग्रामीणों को सौंपा जा रहा है। उसका रख–रखाव भी वे ही करेंगे। इसके साथ ही जल आपूर्ति के क्षेत्र में जल–प्रदूषण और भू–जल स्तर नीचे चले जाने की दो नई समस्याएं पैदा हो गई हैं। इन समस्याओं से कैसे निपटा जा सकता है, पढ़िए इस बारे में जानकारी इस लेख में।

हमारी पृथ्वी पर तीन चौथाई जल और एक चौथाई धरती है। लेकिन इस तीन चौथाई जल का अधिकांश भाग खारा या नमक मिला है और पीने योग्य नहीं है। इसीलिए अंग्रेजी में एक कहावत है 'सर्वत्र पानी ही पानी लेकिन पीने को एक बूंद नहीं।' यह कहावत समुद्री पानी के साथ बाढ़ के पानी पर भी लागू होती है जो गंदगी और गंदे नालों के पानी से मिल जाने के कारण पीने योग्य नहीं रहता।

पानी ही जीवन है। पानी के बिना किसी किस्म के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। पानी के बिना हम जिन्दा नहीं रह सकते, अन्न नहीं उगा सकते और अनेक

* वरिष्ठ पत्रकार

उपयोगी और आवश्यक कार्य नहीं कर सकते। हमें पीने तथा भोजन बनाने के लिए न केवल पानी चाहिए बल्कि शुद्ध पानी चाहिए। शुद्ध पेयजल का अर्थ है ऐसा पानी जिसमें बीमारी फैलाने वाले कीटाणु न हों और जो सभी प्रकार के हानिकारक रसायनों जैसे फ्लूअराइड, खारेपन, अतिरिक्त लौह तत्वों, आर्सनिक और नाइट्रेट से मुक्त हो या उसमें ये रसायन निर्धारित मात्रा से अधिक न हों।

स्वतंत्रता के बाद जब देश में योजनाबद्ध विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं शुरू की गईं तो राज्य सरकारों ने ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की व्यवस्था के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराए। पहली योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की व्यवस्था के लिए 49 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई। इसके बाद हर योजना में इस कार्य के लिए आवंटित राशि में बढ़ोतरी की गई है। आठवीं योजना में इस कार्य के लिए 16,711 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। वार्षिक योजनाओं में भी इस मद में पर्याप्त राशि रखी गई। 1999–2000 में ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के लिए 1,800 करोड़ रुपये रखे गए। चूंकि गांवों में शुद्ध पेय जल उपलब्ध कराने का दायित्व राज्य सरकारों का है अतः इस मद में राज्य सरकारों ने भी इतनी ही राशि उपलब्ध कराई। वर्तमान वित्त वर्ष के बजट में जल आपूर्ति विभाग के बजट में 1,960 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

जल आपूर्ति कार्यक्रम की शुरुआत 1954 में की गई। धीरे–धीरे इसके क्षेत्र का विस्तार किया गया। 1972–73 में राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों को पेय जल आपूर्ति कार्यक्रम में सहायता देने के लिए त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम को पर्याप्त संसाधन और तकनीकी सहायता उपलब्ध कराने, लागत घटाने और चल रहे कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता बढ़ाने के लिए एक मिशन का स्वरूप प्रदान किया गया। 1986 में पेयजल और संबंधित जल प्रबंध पर टेक्नालाजी मिशन शुरू किया गया। इसे राष्ट्रीय पेय जल मिशन भी कहा जाता था। 1991 में इसे राजीव गांधी राष्ट्रीय पेय जल मिशन नाम दे दिया गया। पीने के पानी के महत्व पर जोर देने, देश के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धारित समय के भीतर सर्वत्र पेय जल उपलब्ध कराने के लिए अक्तूबर 1999 में भारत सरकार ने एक नए पेय जल आपूर्ति विभाग की स्थापना की।

त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण जनता को शुद्ध और पर्याप्त मात्रा में पेय जल उपलब्ध कराना है। वह इस दिशा में राज्य सरकारों और केन्द्रशासित प्रदेशों द्वारा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत किए गए कार्य को आगे बढ़ाता है।

इस परियोजना में जल आपूर्ति का डिजाइन बनाने से लेकर उसका निर्माण करने और उसे चलाने का कार्य ग्रामीण स्वयं करेंगे। वे जल आपूर्ति योजना के खर्च का एक भाग भी देंगे। योजना का निर्माण पूरा हो जाने के बाद वे उसके रख–रखाव का और मरम्मत का पूरा खर्च उठाएंगे।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति प्रति दिन 40 लीटर शुद्ध पेय जल की आपूर्ति करने का मानक है। रेगिस्तान विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत जानवरों के लिए प्रतिदिन 30 लीटर अतिरिक्त पानी दिए जाने की व्यवस्था है। पानी के स्रोत मैदानी इलाकों में बस्ती से 1.6 किलो मीटर से अधिक दूर और पर्वतीय इलाकों में 100 मीटर की ऊंचाई से अधिक दूरी पर नहीं होने चाहिए।

प्राथमिकताएं

कार्यक्रम शुरू करते समय उन गांवों को प्राथमिकता दी जाती है जहां कार्यक्रम लागू नहीं किया गया है या आंशिक रूप से लागू किया गया है, जहां लोगों को प्रति दिन प्रति व्यक्ति 10 लीटर से कम पानी मिलता है, जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति के लोगों की संख्या अधिक है और जहां का जल रसायनों से प्रदूषित है। अगर आंगनबाड़ी और स्कूलों में शुद्ध पेयजल की सुविधा नहीं है तो उन्हें भी यह सुविधा उपलब्ध कराई जाती है।

नया रूप

भारत सरकार ने ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम को एक सरकारी विभाग द्वारा संचालित केन्द्रीय कार्यक्रम के स्थान पर ग्रामीणों द्वारा संचालित विकेन्द्रित कार्यक्रम बनाने के लिए इसे नया रूप प्रदान किया है। नई नीति के अन्तर्गत त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम का 20 प्रतिशत परिव्यय उन राज्यों को दिया जाएगा जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरु करेंगे। इस परियोजना में जल आपूर्ति का डिजाइन बनाने से लेकर उसका निर्माण करने और उसे चलाने का कार्य ग्रामीण स्वयं करेंगे। वे जल आपूर्ति योजना के खर्च का एक भाग भी देंगे। योजना का निर्माण पूरा हो जाने के बाद वे उसके रख–रखाव का और मरम्मत का पूरा खर्च उठाएंगे।

राज्य सरकारों ने प्रयोग के तौर पर इस योजना को लागू करने के लिए 58 जिलों की पहचान कर ली है। इस योजना का असली उद्देश्य लोगों को आत्म–निर्भरता और सामुदायिक सम्पत्ति के प्रबंध का प्रशिक्षण देना है। यह केवल एक भौतिक योजना नहीं है यह एक विचार, एक संकल्पना को लागू करना है। योजना को कार्यान्वित करने से पहले लोगों को इसके बारे में पूरी जानकारी दी जाएगी। उनमें इसे लागू करने की आवश्यकता के बारे में चेतना फैलाई जाएगी। उन्हें इसे लागू करने के योग्य बनाया जाएगा। उन्हें परियोजना के पूंजीगत खर्च, रख–रखाव खर्च, उपलब्ध प्रौद्योगिकी, योजना बनाने, उसके लिए धन की व्यवस्था करने और उसके कार्यान्वयन के बारे में विस्तार से बताया जाएगा। सरकार का मानना है कि इन परियोजनाओं का सफल संचालन ग्रामीणों के हित में है अतः वे शीघ्र ही इसे सफल बनाने के लिए जुट जाएंगे।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार लगभग 83 प्रतिशत ग्रामीण घरों के लिए शुद्ध पेय जल की व्यवस्था की जा चुकी है, लगभग 15 प्रतिशत घरों के लिए आंशिक व्यवस्था की जा चुकी है, केवल दो प्रतिशत घरों के लिए

यह व्यवस्था होनी बाकी है। एक लाख से अधिक पाइप लाइन आपूर्ति योजनाओं को कार्यान्वित किया जा चुका है और ग्रामीण क्षेत्रों में 30 लाख से अधिक हैंड पम्प लगाए जा चुके हैं।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि पेयजल स्रोत सूखने न पाएं और उनमें निरन्तर पानी उपलब्ध होता रहे, एक संचालन समिति बनाई गई है। यह समिति जल संग्रह, संरक्षण और प्रबंध की एकीकृत कार्य योजना का सुझाव देगी।

लगभग पांच दशक पूर्व जब देश की जनसंख्या कम थी, वनों का इतना विनाश नहीं हुआ था और उद्योगों ने हवा, जमीन और नदियों में जहर घोलना शुरू नहीं किया था शुद्ध पीने के पानी की समस्या उतनी उग्र नहीं थी। तथापि, उन दिनों भी कुछ गांवों में महिलाओं को पानी लाने के लिए दो तीन मील की दूरी तय करनी पड़ती थी। कुछ गांवों में अज्ञानता, मजबूरी में लोग फ्लुअराइड तथा अन्य रसायन मिला पानी पीते थे।

स्वतंत्रता के बाद गांवों में शुद्ध पेय जल उपलब्ध कराने के क्षेत्र में काफी अच्छा काम हुआ है। लेकिन समस्या अभी भी बनी हुई है। इस समस्या के कारण हैं : नए गांवों का बसना, जल स्रोतों का सूख जाना, जल स्रोतों का प्रदूषित हो जाना, जल आपूर्ति व्यवस्था के उपकरणों, और पाइप लाइन का क्षतिग्रस्त हो जाना और तत्काल या समय पर उनकी मरम्मत न हो पाना।

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि इस समय विश्व की एक तिहायी आबादी शुद्ध पेय जल की कमी का सामना कर रही है। अगर इस स्थिति में सुधार लाने के लिए कुछ नहीं किया गया तो अगले 25 वर्षों में विश्व की दो तिहायी जनता को पेय जल की समस्या का सामना करना पड़ सकता है।

जल स्तर नीचे जाने के कारण

जल स्रोतों के अधिक उपयोग या दुरुपयोग से वे सूख जाते हैं। देश के अधिकांश क्षेत्रों में पेय जल के लिए भूमिगत जल का उपयोग किया जाता है। अब कुछ किसान नल कूप लगाकर गन्ने, मूंगफली या अन्य वाणिज्यिक फसलों की खेती शुरू कर देते हैं। वाणिज्यिक फसलों में खाद्यान्न फसलों की तुलना में सिंचाई के लिए बहुत अधिक पानी की जरूरत होती है। जमीन के अन्दर सीमित मात्रा में पानी है। पहले जमीन में बड़ी संख्या में लगे पेड़, घास, हरियाली, वर्षा के पानी को बहने नहीं देते थे। इससे भूमिगत जल का स्तर नीचे नहीं जा पाता था। लेकिन हरियाली की समाप्ति और पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से वर्षा का पानी बहुत सी उपजाऊ मिट्टी को साथ लेकर ऊपर ही ऊपर बह जाता है। धरती के नीचे नहीं पहुंचता।

फिर गन्ना या वैसी ही अन्य वाणिज्यिक फसलों के लिए किसानों ने अंधाधुंध नल कूप लगाए हैं। देश में 85 लाख बिजली और डीजल के पम्प हैं इससे भूमिगत जल का स्तर बहुत नीचे चला गया है। गुजरात में भूमिगत जल के अत्यधिक दोहन के परिणामस्वरूप अनेक क्षेत्रों में जल स्तर 40 मीटर नीचे चला गया है। राजस्थान में पिछले कई वर्षों से कुछ जिलों में जल स्तर एक मीटर प्रति वर्ष की दर से नीचे जा रहा है।

पहले गांवों में पर्याप्त संख्या में बड़, आम, इमली, नीम और पीपल के वृक्ष लगाए जाते थे। हरे वृक्षों को काटना अनुचित समझा जाता था। ये वृक्ष जल स्तर को स्थिर रखने में सहायता देते थे। इस तरह के अधिकांश वृक्षों का सफाया किया जा चुका है। इनके स्थान पर जल्दी बढ़ने वाले यूकेलिप्टस और पोपलर के वृक्ष लगाए गए हैं। ये वृक्ष धरती की सम्पूर्ण नमी को सोख जल स्तर को नीचे ले जाते हैं।

जल प्रदूषण के कारण

पानी के प्रदूषण के कारण हैं : उद्योगों का हानिकारक और जहरीला कचरा नदियों, नहरों और नालों में छोड़ा जाना, बड़े नगरों की गंदी नालियों–नालों का पानी बिना साफ किए नदियों में छोड़ा जाना, किसानों द्वारा कीटाणु नाशक दवाओं, उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग और उसका रिस कर नदियों में पहुंचना और धरती में उपलब्ध फ्लूअराइड, नाइट्रेट आदि का अधिक मात्रा में जल में मिल जाना। इसका सीधा संबंध जल स्तर के नीचे जाने और भूमिगत जल की मात्रा घट जाने से है।

राजस्थान में नागौर, जोधपुर, सीकर, चुरू, झुंझनू, पाली, जालौर, हरियाणा में महेन्द्रगढ़, भिवानी, हिसार और गुजरात में महसाना और बनासकांठा जिलों में हानिकारक रसायन मिश्रित पानी पीने से लोग अनेक किस्म की बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। पश्चिम बंगाल के कुछ जिलों में भूमिगत जल आर्सनिक से प्रदूषित हो रहा है। अनुमान है कि लगभग 15 लाख लोग आर्सनिक मिला पानी पी रहे हैं और दो लाख लोग आर्सनिक से होने वाली बीमारियों से पीड़ित हैं।

सारणी I

पेय जल और सफाई सुविधाओं के अन्तर्गत आने वाली जनसंख्या
(31 मार्च की स्थिति के अनुसार कवरेज)

मद / क्षेत्र	1985	1990	1995	1998 (अनुमानित)
पेय जल आपूर्ति				
ग्रामीण	56.3	73.9	82.8	92.5
शहरी	72.9	83.8	84.3	90.2@
सफाई सुविधाएं				
ग्रामीण	0.7	2.4	3.6	8.1*
शहरी	28.4	45.9	49.9#	49.3@

दिनांक 31.3.1993 की स्थिति के अनुसार

* सी.आर.एस.पी., एम.एन.पी., जवाहर रोजगार योजना और इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत सरकार के उपायों से

@ 31.3.1997 की स्थिति के अनुसार

स्रोत : ग्रामीण विकास और शहरी विकास मंत्रालय

इस वर्ष मार्च में हेग में विश्व जल परिषद द्वारा आयोजित सम्मेलन में बताया गया कि गंगा सहित विश्व की आधी नदियों में पानी कम हो रहा है और वे प्रदूषित हो रही हैं। गर्मियों में गंगा में पानी की इतनी कमी हो जाती है कि इसके कारण विश्व के सबसे अनुपम और मूल्यवान पर्यावरण स्थल सुन्दरवन का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। वाशिंगटन स्थित विचारक–संगठन 'वर्ल्डवाच इंस्टीट्यूट' ने अन्तर्राष्ट्रीय जल प्रबंध संस्थान के हवाले से कहा है कि पानी के अभाव में भारत के खाद्यान्न उत्पादन में एक चौथाई की कमी हो सकती है। देश की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए यह बहुत ही चिन्ता का विषय है।

ग्रामीण क्षेत्रों में जल आपूर्ति की व्यवस्था करने के बावजूद यानी हैंड पम्प लगाने और पाइप लाइन बिछाने पर भी कभी–कभी जल आपूर्ति समाप्त हो जाती है। ऐसा जल लाने के उपकरणों, यंत्रों, पाइप लाइन आदि के खराब होने या टूट–फूट होने के कारण होता है। गांव निवासियों को मरम्मत के लिए बाहरी आदमियों पर निर्भर रहने के कारण उन्हें कभी–कभी बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। इसका एक मात्र समाधान इस तरह की मरम्मत के लिए स्थानीय स्त्री–पुरुषों को प्रशिक्षित करना है। राजस्थान के तिलोनिया गांव में महिलाओं ने ऐसा प्रशिक्षण लेकर एक उदाहरण कायम किया था। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार स्थानीय लोगों को ऐसा प्रशिक्षण देकर इस समस्या का समाधान करना होगा।

सौभाग्यवश अभी तक देश के सभी भागों में गर्मी के मौसम को छोड़ अन्य मौसमों में पीने का पानी पर्याप्त मात्रा में और लगभग मुफ्त उपलब्ध है। अगर पानी पर कोई शुल्क लिया भी जाता है तो वह नगण्य है। पानी कितना आवश्यक और कीमती है इसका पता हमें तभी लगता है जब पानी का अभाव होता है। पानी के अभाव में जरूरत होने पर हम एक बोतल पानी के लिए 10–15 रुपये खुशी से खर्च करते हैं। गर्मियों में पानी की कमी होने पर दिल्ली सहित देश के अनेक नगरों में एक बाल्टी पानी के लिए लोग दो से पांच रुपये तक खुशी से देते हैं, लेकिन पानी के शुल्क में मामूली बढ़ोतरी होने पर लोग हो हल्ला मचाते हैं।

हमें इस बात को साफ तौर पर समझ लेना चाहिए कि हम अधिक समय तक अमूल्य जल सम्पदा का नगण्य मूल्य पर उपभोग नहीं कर सकते। हमें अपनी जल सम्पदा का संग्रह और संरक्षण करना होगा। इसके लिए पर्याप्त साधनों की जरूरत होगी, जो हम में से प्रत्येक को उपलब्ध कराने होंगे। हमें न केवल शुद्ध पेय जल की आपूर्ति का खर्च देना होगा बल्कि अपने घर से निकले, दूषित जल और कूड़े–कचरे को ठिकाने लगाने का खर्च भी देना होगा। ऐसा करना हमारे अपने हित में होगा क्योंकि ऐसा करके हम अनेक जान लेवा बीमारियों की मार से मुक्त रहेंगे।

लगभग 83 प्रतिशत ग्रामीण घरों के लिए शुद्ध पेय जल की व्यवस्था की जा चुकी है, लगभग 15 प्रतिशत घरों के लिए आंशिक व्यवस्था की जा चुकी है, केवल दो प्रतिशत घरों के लिए यह व्यवस्था होनी बाकी है।

इसी के साथ हमें इस बात को भी समझ लेना चाहिए कि जमीन, जल और जंगल एक दूसरे के पूरक हैं। अगर धरती हरी–भरी होगी, वृक्षों से आच्छादित होगी, हमारे पास–पड़ोस में घने वन होंगे तो हमें घास, पानी और ईंधन की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा।

हमारा देश प्रति वर्ष वर्षा से 4,000 अरब घन मीटर पानी प्राप्त करता है। इसका बड़ा हिस्सा नदी नालों के जरिए समुद्र में पहुंच कर व्यर्थ चला जाता है। जल संरक्षण के परम्परागत तरीकों का इस्तेमाल करके हम इसका बड़ा हिस्सा अपने उपयोग में लाने के लिए बचा सकते हैं। अगर हम इस पानी को बहने देने के स्थान पर बांध, सरोवर, ताल–तलैया बनाकर रोक दें तो यह धीरे–धीरे धरती में समा जाएगा। इससे हमारा जल स्तर गिरने नहीं पाएगा।

पंजाब, महाराष्ट्र और चंडीगढ़ सहित देश के कई क्षेत्रों में कुछ व्यक्तियों और स्वयंसेवी संगठनों ने तालाबों, सरोवरों को गहरा करके, 'चेक–डैम' और जोहड़ों का निर्माण करके वर्षा में बह जाने वाले पानी का संग्रह किया। इससे ये क्षेत्र न केवल शीघ्र ही हरे–भरे हो गए बल्कि इन क्षेत्रों की सूखी नदियां बारहमासी नदियों में बदल गईं। इस दिशा में महाराष्ट्र के गांव शिरडी ने तो कमाल ही कर दिखाया है। उस गांव के निर्जन, बीहड़ ऊबड़–खाबड़ क्षेत्र में वर्षा का पानी रोकने की व्यवस्था करके उसे नंदन कानन में बदल दिया गया है। अब उस क्षेत्र में अनार, अंगूर, अमरूद आदि फल प्रचुर मात्रा में पैदा किए जा रहे हैं। क्षेत्र के सरोवर पानी से लबालब भरे हैं और भूमिगत जल का स्तर भी स्थिर है।

इस संबंध में सबसे नया उदाहरण राजस्थान के अलवर जिले के भांवरा कोल्याला गांव का है। वहां के लोगों ने अपने प्रयासों से चेक डाम, जोहड़ बनाकर, वर्षा के जल को सरोवरों, तालाबों में एकत्र करके अरवारी नदी का सूखा पाट बारहमासी नदी में बदल दिया है। उनके इस कार्य की भारत के राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन ने भी प्रशंसा की है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि दृढ़ इच्छा–शक्ति होने पर स्थानीय जनता अपने साधनों और अपनी मेहनत से इस दिशा में चमत्कारिक नतीजे प्राप्त कर सकती है। पर्यावरण की रक्षा करना हम सबका कर्तव्य ही नहीं, सामाजिक जिम्मेदारी है। वर्षा के जल का संचय करके, वृक्षों की रक्षा करके, अपनी जमीन पर आम, कटहल, नीम, पीपल अथवा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अन्य वृक्ष लगाकर हम न केवल पर्यावरण की रक्षा में योगदान देते हैं बल्कि अपनी समृद्धि का मार्ग तैयार करते हैं। इससे भूमिगत जल का स्तर नहीं गिरता और आस–पास का क्षेत्र हरा–भरा हो जाता है। हमारे देश में ग्राम स्तर पर 2,27,698 पंचायतें, मध्यस्तर पर 5,906 पंचायतें और जिला स्तर पर 474 पंचायतें हैं। इन पंचायतों में 34 लाख निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। ये सभी इस कार्य का नेतृत्व कर सकते हैं। लोग व्यक्तिगत तौर पर भी यह काम कर सकते हैं। इससे पर्यावरण की रक्षा के साथ–साथ व्यक्तिगत खुशहाली का मार्ग प्रशस्त होता है। ❑

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को कारगर बनाने में पंचायतों की भूमिका

डा. महीपाल

पंचायतें हमारे लिए कोई नई संस्थाएं नहीं हैं। चिरकाल से पंचायतें ग्रामीण समाज का नेतृत्व करती रही हैं। यह बात अलग है कि उस समय ये संस्थाएं ग्रामीण समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व नहीं करती थीं। आजादी के बाद पंचायत को लोकतांत्रिक चरित्र देने के लिए इन्हें पंचायती राज कहा गया अर्थात् वह राज जिसमें सभी लोगों की भागीदारी हो। अतीत में पंचायतों का कार्य न्यायिक और सामाजिक था, विकास कार्य उनके "मेनडेट" में नहीं थे। देश आजाद हुआ। ग्रामीण विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम चलाया गया लेकिन यह टिकाऊ नहीं बन सका क्योंकि इसमें लोगों की कम, नौकरशाही की अधिक भागीदारी थी। खैर, सभी की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सामुदायिक कार्यक्रम का मूल्यांकन किया गया। बलवंत राय मेहता समिति ने तीन स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की सिफारिश की। बाद में अशोक मेहता कमेटी बनी, उसने भी इस तरह की सिफारिश की। लेकिन कुल मिलाकर पंचायतों को सततता और समरसता प्राप्त नहीं हो सकी। ग्रामीण विकास करना तो दूर रहा, इन संस्थाओं के लगातार चुनाव तक नहीं हुए। यह सब देखते हुए पंचायतों को सशक्त बनाने और आम आदमी की इनमें भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए 73वां संविधान संशोधन विधेयक लाया गया। इस संविधान संशोधन विधेयक के बाद पंचायतों की ग्रामीण विकास में क्या भूमिका रही है, अगर भूमिका प्रभावशाली नहीं रही है तो उसके क्या कारण हैं और भूमिका को प्रभावशील बनाने के लिए क्या करने की जरूरत है इस पर इस लेख में चर्चा की गई है।

73वें संविधान संशोधन से पहले पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए किए प्रयासों पर प्रकाश डालने से पहले यह कहना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि संवैधानिक दर्जे का अपना महत्व है लेकिन अगर राजनीतिक

चाहे अभी घूंघट काढ़े ही सही, महिलाएं पंचायतों की बैठकों में भाग लेने लगी हैं

इच्छा–शक्ति हो तो पंचायतों की भूमिका ग्रामीण विकास में कारगर करने के लिए किसी संविधान संशोधन की जरूरत नहीं।

रामकृष्ण हेगड़े ने कर्नाटक में अपने मुख्यमंत्री काल में पंचायतों को सशक्त कर उन्हें भ्रष्टाचार के विरुद्ध औजार बनाया। उदाहरण के तौर पर शिमागो जिले के एक खास तालाब में मछली पकड़ने का अधिकार राज्य का मछली विभाग नीलाम करता था। कभी भी नीलामी राशि 12,000 रुपये से अधिक नहीं गई, लेकिन जब यह कार्य मण्डल पंचायत को हस्तांतरित कर दिया तो पहले वर्ष ही इस तालाब की नीलामी राशि 75,000 रुपये तक गई। कारण, लोगों को पता था कि इसमें इतने रुपये की मछलियां हैं।

इसी तरह पश्चिम बंगाल में पुरुलिया जिले में एक पुल बनना था। राज्य के सार्वजनिक विभाग ने इसको बनाने के लिए 21 लाख रुपये की लागत बताई और दो 'वर्किंग सीज़न' बताए। राज्य सरकार के पास इतना पैसा नहीं था। सरकार ने यह जिम्मेदारी पंचायत समिति को दी तो उसने उस पुल को छह लाख रुपये में व एक ही "सीजन" में तैयार कर दिया।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि पंचायतें स्थानीय स्तर पर लोगों की भागीदारी सुनिश्चित कर कम लागत में पारदर्शिता के आधार पर ग्रामीण विकास कर सकती हैं। देश में पश्चिम बंगाल अकेला राज्य है जहां पर 1977 के बाद लगातार चुनाव हो रहे हैं। इसका ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए 1973–74 से 1993–94 के मध्य गरीबी में कमी का प्रतिशत 57.34 रहा है जबकि देश में यह प्रतिशत 33.96 रहा है। इस कमी का मुख्य कारण पंचायतों की भूमिका रही है।

पंचायतों को 73वें संविधान संशोधन के बाद अधिक अधिकार व शक्तियां प्रदान की गई हैं लेकिन राज्यों के पंचायत अधिनियमों का अगर अध्ययन करें तो पाते हैं कि पंचायतों को सम्पूर्ण रूप से कार्यात्मक, वित्तीय व प्रशासनिक आजादी नहीं दी गई है। विकेन्द्रीकृत शासन–प्रशासन के हर महत्वपूर्ण बिन्दु पर पंचायत अधिनियमों में 'किन्तु' व 'परन्तु' हैं। इसके अतिरिक्त संशोधन के बाद एक दो राज्यों को छोड़कर पंचायतें 5 वर्ष भी पूरे नहीं कर पाई हैं। इतनी कम अवधि में पंचायतों का मूल्यांकन करना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होगा। फिर भी कुछ राज्यों में, जहां पंचायतों को कार्य करते हुए 5 वर्ष से अधिक समय हो गया है, वहां पर उनके कार्यों पर टिप्पणी की जा सकती है। संविधान संशोधन के बाद दो राज्य केरल व मध्य प्रदेश ने पंचायतों को स्वायत्तता देने की ओर सराहनीय कार्य किया है। आइये इन राज्यों का उदाहरण देकर पंचायतों के ग्रामीण विकास में योगदान का मूल्यांकन करते हैं।

पश्चिम बंगाल में पुरुलिया जिले में एक पुल बनना था। राज्य के सार्वजनिक विभाग ने इसको बनाने के लिए 21 लाख रुपये की लागत बताई और दो 'वर्किंग सीज़न' बताए। राज्य सरकार के पास इतना पैसा नहीं था। सरकार ने यह जिम्मेदारी पंचायत समिति को दी तो उसने उस पुल को छह लाख रुपये में व एक ही "सीजन" में तैयार कर दिया।

केरल में नवीं पंचवर्षीय योजना के लिए पंचायतों के माध्यम से 'पीपुल कम्पेन' चला है। इस कम्पेन में कुल राज्य परिव्यय का लगभग 35 से 40 प्रतिशत पंचायतों को हस्तांतरित किया है। 1997–98 के दौरान पंचायतों को 1,025 करोड़ रुपये हस्तांतरित किए गए जबकि पहले 20 से 30 करोड़ रुपये ही पंचायतों को हस्तांतरित होते थे। यह जन अभियान 1990 ग्राम पंचायतों, 152 ब्लाक पंचायतों, 14 जिला पंचायतों, 55 नगरपालिकाओं और तीन नगर निगमों में आरम्भ हुआ था। गांव में वार्ड स्तर पर विशेष सम्मेलन आयोजित किए जिनमें वार्डों की आवश्यकताओं की पहचान की गई। अधिक से अधिक जनता की भागीदारी इन सम्मेलनों में हो, इसके लिए सभाएं छुट्टी के दिन में रखी गईं। ग्रामीणों को तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए तकनीकी दल बनाए, जिन्होंने विभिन्न योजनाओं का तकनीकी दृष्टि से मूल्यांकन किया। इस तरह के प्रयासों से स्थानीय लोगों में योजना बनाने की क्षमता का विकास हुआ है। अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा बनाई गई योजनाओं में साधनों का अधिक हिस्सा सार्वजनिक कार्यों और प्रशासन पर खर्च होता था, जबकि लोगों द्वारा बनाई गई योजनाओं में साधनों का अधिक आवंटन सेवा–क्षेत्र बुनियादी सेवाओं पर किया गया। इस अभियान में विभिन्न राजनैतिक दल, विद्वान व धार्मिक नेता शामिल हुए। इससे राज्य में एक नया सामाजिक तथा सांस्कृतिक दौर शुरू हुआ।

केरल के इस अनूठे अनुभव के महत्व को देखकर विश्व बैंक के एक दल ने भी कहा है कि शायद विकेन्द्रीकरण का यह कार्यक्रम विश्व में सबसे बड़ा है। इस अभियान में राज्य की 10 प्रतिशत जनसंख्या ने भाग लिया। ग्रामीण विकास और विकेन्द्रीकृत शासन की दिशा में वह अपने आप में दूरगामी 'इनोवेटिव' और साहसिक कार्य है। यह वास्तव में दलितों, पिछड़ों व महिलाओं के सशक्तिकरण और स्थानीय संस्थाओं में लोगों के प्रति उत्तरदायी बनाने की ओर महत्वपूर्ण कदम है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि कार्यक्रम और नीतियां तभी अधिक सफल हो पाती हैं जब उनको लागू करने के लिए उचित संस्थाएं हों और उनके पीछे जन आन्दोलन हो। केरल में ग्रामीण विकास के लिए जो आन्दोलन चल रहा है उसको पंचायतों ने उपजाऊ जमीन दी है जिससे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में वृद्धि ही नहीं होगी बल्कि उनमें प्रभावशीलता भी आयेगी।

मध्य प्रदेश सरकार ने विकेन्द्रीकृत शासन, और प्रशासन में लोगों की भागीदारी बढ़ाने के लिए अनेक स्वागत–योग्य कदम उठाये हैं। इसी कड़ी में एक कदम जिला सरकार का गठन है और जल्दी ही राज्य सरकार ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम सरकार भी गठित करने जा रही है। विदित है संविधान की धारा 243 जेड.डी. के अनुसार जिला योजना समिति बनाने का प्रावधान है। इसी समिति को राज्य सरकार ने जिला योजना समिति अधिनियम 1995 में संशोधन कर जिला सरकार का दर्जा दिया है। राज्य सरकार ने जिला सरकार को योजना बनाने, क्रियान्वयन करने और अनुश्रवण तथा मूल्यांकन करने के अतिरिक्त कुछ क्षेत्रों के प्रशासनिक मामले भी

सौंपे हैं। इससे यह लाभ हुआ है कि जिला और उससे नीचे स्तर के बहुत से कार्य जिला स्तर पर ही सम्पन्न हो जाते हैं। लोग छोटे–छोटे कार्यों के लिए राज्य सचिवालय में दौड़धूप करने की बजाय जिला स्तर पर ही सम्पर्क करते हैं। राज्य सरकार के इस प्रयास से सरकार लोगों के नजदीक आएगी, कार्यों का निपटारा जल्दी होगा, प्रशासनिक कार्यकुशलता बढ़ेगी व निर्णयों में पारदर्शिता

कार्यक्रम और नीतियां तभी अधिक सफल हो पाती हैं जब उनको लागू करने के लिए उचित संस्थाएं हों और उनके पीछे जन आन्दोलन हो। केरल में ग्रामीण विकास के लिए जो आन्दोलन चल रहा है उसको पंचायतों ने उपजाऊ जमीन दी है जिससे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में वृद्धि ही नहीं होगी बल्कि उनमें प्रभावशीलता भी आयेगी।

आएगी। जिला सरकार के प्रभाव के बारे में राज्य के सम्पर्क मंत्री ने बताया है कि सचिवालय में अपना कार्य कराने वालों की संख्या में 25 प्रतिशत की कमी आई है। इससे साबित होता है कि जिला सरकार कुछ हद तक प्रभावी और सफल हो रही है।

देश के अन्य राज्यों को भी इसी तरह की पहल करनी चाहिए। इस तरह के प्रयास विकास में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के साथ–साथ अलग राज्य बनाने की प्रवृत्ति, जो देश के विभिन्न भागों से उठ रही है, उस पर भी बहुत हद तक अंकुश लगाने में सफल हो सकते हैं।

73वें संविधान संशोधन को देश की पांचवीं अनुसूची के राज्यों अर्थात् आन्ध्र प्रदेश, बिहार, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, उड़ीसा व महाराष्ट्र में भी पंचायत प्रावधान (विस्तारित अधिनियम) 1996 द्वारा विस्तारित किया गया है। इस अधिनियम द्वारा मुख्य रूप से जल, जंगल व जमीन का स्वामित्व ग्राम सभा और पंचायतों के सुपुर्द किया है। वैसे अभी इसको चलन में आए अधिक समय नहीं हुआ है लेकिन इसके कुछ प्रभाव सामने आए हैं जिससे ग्रामीण आदिवासी समाज पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए राजस्थान के उदयपुर डिविजन के उदयपुर, डुमरपुर व बासवाड़ा जिलों से जहां 'आस्था' व 'सेवा मन्दिर' सामाजिक संस्थाएं कार्य कर रही हैं वहां पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यहां पर सामाजिक संस्थाओं ने कुछ गांवों के अन्दर शिलाएं गाड़कर उन पर ग्राम सभा के अधिकार लिखवाए हैं जिनसे आदिवासियों में विश्वास आया है कि अब तो उनके गांव में उनकी सरकार हो गई है। जल, जंगल व जमीन पर अब उनका अधिकार होगा। कुछ गांवों में ग्राम सभा ने राज्य सरकार के ठेकेदारों को खजूर की पत्तियां काटने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि अब विस्तार अधिनियम के द्वारा यह ग्राम सभा की सम्पत्ति है। इस बात का असर गांवों पर भी पड़ा है। इससे गांव के प्राकृतिक साधनों जिन पर राज्य का कब्जा रहता था अब पंचायतों के हाथ में होंगे जिससे इन गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। कुछ गांवों में वहां के निवासियों ने अपने आपसी झगड़े पुलिस थाने में जाने की बजाय स्वयं ही निपटाए। मजे की बात यह है कि वह जनजातीय क्षेत्र जो पांचवीं अनुसूची क्षेत्र में नहीं आता है वहां पर भी गांवों में जहां पर आदिवासी सामाजिक संस्थाओं के साथ जुड़े हैं, जागरूकता आ गई है। उदयपुर जिले की गो सुन्दर तहसील का बाग दुन्दर खेड़ा गांव इसका गवाह है जहां पर ग्राम सभा ने अपने गांव के परम्परागत धार्मिक स्थान के पास ग्राम सभा की शक्तियों और अधिकारों को शिला पर लिख दिया है। इसका सकारात्मक प्रभाव यह पड़ा है कि लोगों ने अपने झगड़े स्वयं में ही सुलझा लिए हैं।

पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण समाज के कमजोर तबकों व महिलाओं को आरक्षण देकर उनकी छुपी ऊर्जा को उभारा है। इससे शिथिल पड़े समाज में हलचल आई है। पंचायतों के माध्यम से अनेक महिलाएं जैसे फातिमा बी आन्ध्र प्रदेश, सुधा पटेल गुजरात, गुडया बाई मध्य प्रदेश आदि ऐसी ही हजारों महिलाएं हैं जिन्होंने पंचायतों का नेतृत्व संभालने के बाद ग्रामीण विकास के अनेक सामाजिक, आर्थिक कार्यों को कार्यान्वित कराया है। अभी हाल में उत्तर प्रदेश में सम्पन्न पंचायत चुनावों में जिला पंचायत के अध्यक्ष पद हेतु 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं जीत कर आई हैं। इसका ग्रामीण विकास, खासकर महिला और बाल विकास कार्यक्रमों, पर सकारात्मक असर पड़ेगा।

महिलाओं के अतिरिक्त अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की भागीदारी सुनिश्चित हुई है। ये वर्ग जिन्हें एक गांव के

यहां पर सामाजिक संस्थाओं ने कुछ गांवों के अन्दर शिलाएं गाड़कर उन पर ग्राम सभा के अधिकार लिखवाए हैं जिनसे आदिवासियों में विश्वास आया है कि अब तो उनके गांव में उनकी सरकार हो गई है। जल, जंगल व जमीन पर अब उनका अधिकार होगा। कुछ गांवों में ग्राम सभा ने राज्य सरकार के ठेकेदारों को खजूर की पत्तियां काटने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि अब विस्तार अधिनियम के द्वारा यह ग्राम सभा की सम्पत्ति है।

शासन में कोई पूछता नहीं था अब प्रधान व सरपंच बने हुए हैं। इससे उनको शासन प्रशासन के बारे में पता चल रहा है। वे धीरे–धीरे शासन करने की कला जान रहे हैं, इससे इस वर्ग की सोच और समझ पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। उनको अपने पर भरोसा हो रहा है कि वे भी शासन कर सकते हैं। इस दृष्टिकोण परिवर्तन का, जो पंचायतों द्वारा लाया गया है, ग्रामीण विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और भविष्य में इन लोगों को शोषण का शिकार भी नहीं बनाया जा सकेगा।

पंचायतें अधिक प्रभावी ढंग से ग्रामीण विकास करें इसके लिए पंचायतों को वांछित कार्यात्मक, वित्तीय व प्रशासनिक स्वायत्तता की जरूरत है। पंचायतों के समान्तर जो विभिन्न संस्थाएं कार्य कर रही हैं उनको पंचायतों में मिलाने की जरूरत है। इसके लिए जन आन्दोलन चलाया जाना चाहिए। ❑

ग्रामीण निर्धनता

दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता

डा. लक्ष्मीरानी कुलश्रेष्ठ

गरीबी उन्मूलन, के प्रयासों के बावजूद भी भारत गरीब है। गरीबी उन्मूलन के प्रयासों को वांछित सफलता क्यों नहीं मिली, इसके सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक कारण क्या रहे इस पर लेखिका ने विस्तृत चर्चा की है। साथ ही ग्रामीण निर्धनता दूर करने के व्यावहारिक उपाय भी सुझाए हैं।

एक कल्याणकारी राष्ट्र के नाते समाज के सभी वर्गों, विशेषतः पिछड़े और अभावग्रस्त वर्गों का सर्वांगीण विकास हमारा दायित्व है। हमारा संविधान भी सबको न्याय, समानता और समान अवसर का अधिकार प्रदान करता है। इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु देश के योजनाबद्ध विकास में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम को प्रमुखता प्रदान की गई है तथापि स्थित का तथ्यात्मक विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस दिशा में अभी तक उठाए गए कदम अपर्याप्त रहे हैं। चूंकि गरीबी मूलतः ग्रामीण क्षेत्रों में है, शहरी निर्धनता इसी का अधिप्रवाह (Overflow) है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि गरीबी की समस्या का समाधान करने के लिए अधिकतर कदम ग्रामीण क्षेत्रों में ही उठाए गए हैं।

भारत में ग्रामीण गरीबी का मूल कारण कृषि में अर्द्ध सामंती उत्पादन सम्बन्धों का होना है। स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधारों हेतु उठाए कदम अपर्याप्त थे और वे उत्पादन सम्बन्धों में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं ला सके। इसीलिए लगभग सभी खेतिहर मजदूरों के परिवार, काफी संख्या में छोटे तथा सीमान्त किसानों भूमिहीनों और गैर कृषि क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों के परिवार गरीब हैं। प्रायः ग्रामीण गरीबी के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या को भी दोषी ठहराया जाता है। इस तर्क के अनुसार जहां एक ओर जनसंख्या बढ़ती जा रही है, वहीं दूसरी ओर भूमि उतनी ही रहने के कारण श्रम उत्पादकता और वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में कमी आती है। यह तर्क भारतीय सन्दर्भ में काफी हद तक सही है। भारत की वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों में न तो कृषि सम्बन्धों में परिवर्तनों की आशा है और न ही जनसंख्या की वृद्धि दर कम होने की उम्मीद है।

ग्रामीण समुदाय मुख्यतः परंपरागत तरीकों और मानसून की कृपा पर आधारित कृषि पर निर्भर है। हरित क्रांति ने यद्यपि बड़े काश्तकारों को अवश्य लाभान्वित किया है, लेकिन सीमान्त कृषक तथा कृषि श्रमिक इसके लाभों से वंचित ही रहे हैं। योजनाबद्ध विकास के 50 वर्षों बाद भी ग्रामीण निर्धनता की समस्या का निराकरण नहीं हो पाया है; निर्धन वर्ग आज भी अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए संघर्षरत है। उत्पादक सम्पितियों का अभाव उन्हें शीघ्र ही ऋण जाल में फंसा देता है। वे अशिक्षित हैं, बेरोजगार या अर्द्धबेरोजगार हैं; बेतहाशा जनसंख्या वृद्धि ने उनकी समस्या को और भी गंभीर बना दिया है। यद्यपि गरीबी रेखा से लोगों को ऊपर उठाने में हम कुछ अंशों में सफल हुए हैं, तथापि करोड़ों महिलाओं, बच्चों, वृद्धों, भूमिहीनों और बेरोजगारों की दशा में अपेक्षित सुधार लाने, अभावहीनों को पर्याप्त भोजन तथा आवास की सुविधा उपलब्ध कराने की दिशा में अभी भी काफी कुछ करना बाकी है।

पिछले पांच दशकों के दौरान ग्रामीण उत्थान तथा निर्बल वर्गों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण देश में निर्धनता पर सीधा प्रहार 1980 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को प्रारंभ करके किया गया था। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का उद्देश्य उन छोटे और सीमान्त किसानों, खेतिहर मजदूरों तथा ग्रामीण दस्तकारों की सहायता करना था, जिन लोगों के पास न तो कोई उत्पादक परिसम्पत्तियां थीं, और न ही विशेष

कौशल। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत इन लोगों को नई परिसम्पत्तियां प्रदान करने की व्यवस्था थी ताकि वे इन परिसम्पत्तियों के माध्यम से जीविकोपार्जन के लिए आय जुटा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति लक्षित समूहों को वित्तीय सहायता उत्पादक सम्पत्तियां प्रदान करके की जाती है। यह वित्तीय सहायता सरकार द्वारा दी गई सब्सिडी तथा वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए सावधि ऋणों के रूप में होती है। लक्षित समूह में लघु या सीमान्त किसान, कृषि मजदूर तथा ग्रामीण कारीगर शामिल हैं।

इन कार्यक्रमों से यह अपेक्षित था कि ग्रामीण निर्धन वर्ग की आय, रोजगार और सम्पत्ति–निर्माण में उल्लेखनीय तथा स्थायी तौर पर वृद्धि हो जाएगी, लेकिन ये कार्यक्रम गरीबी निवारण के उद्देश्य में कोई विशेष कामयाब नहीं रहे हैं। ग्रामीण विकास सांख्यिकी के अनुसार ग्रामीण भारत में निर्धनता का स्तर जो 1960–61 में 56.8 प्रतिशत था, तीस वर्षों की समयावधि में यह 28.2 प्रतिशत तक आ पाया था अर्थात् निर्धनता घटने की दर काफी कम अर्थात् एक प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। 1992 की विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार विश्व की कुल निर्धन जनसंख्या (1.133 अरब) का सर्वाधिक भाग भारत में है जो 30–35 करोड़ है।

गरीबी निवारण के अनेक कार्यक्रमों के होते हुए भी भारत में गरीबी की स्थिति इतनी भयावह क्यों है? संभवतः हम नियोजन स्तर तक तो ठीक रहे हैं, लेकिन कुछ बुनियादी नीति सम्बन्धी त्रुटियां इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में रहीं। अनेक अध्ययनों में इन कार्यक्रमों की कमियों की ओर संकेत किया गया है।

सभी विकास खंडों के लिए एक–सी योजनाएं बनाई गईं तथा स्थानीय परिस्थितियों को अनदेखा किया गया, योजनाएं लागू करने हेतु प्रशिक्षित व्यक्तियों की कमी, भ्रष्टाचार और बेईमानी का बोलबाला रहा। देशव्यापी मूल्यांकन अध्ययन नहीं किए गए। रोजगार कार्यक्रमों ने केवल अल्पकाल के लिए रोजगार अवसर पैदा किए हैं, इसीलिए गरीबी पर इसका कोई दीर्घकालीन प्रभाव नहीं पड़ा। योजनाओं को समग्र स्तर पर तैयार किया गया था, लेकिन जब योजनाओं को निर्धन परिवारों पर क्रियान्वित किया गया, तो इनको अनुपयुक्त पाया गया। ग्रामीण विकास हेतु आवंटित कोषों का केवल 15 प्रतिशत भाग ही ग्रामीण निर्धनों तक पहुंच पाना, शेष कोष भ्रष्ट चेनलों में चले जाना, कोषों का समुचित उपयोग न होना, ग्रामीण समाज में शोषणवादी प्रवृत्तियों की जड़ें मजबूत होना आदि तत्व किसी भी विकास योजना को खोखला बना देने की सामर्थ्य रखते हैं। कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में निष्ठा का अभाव रहा। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को क्षेत्रीय स्तर पर समन्वित नहीं किया गया। अनेक कार्यक्रम अस्थायी प्रकृति के थे तथा सुनियोजित नहीं थे, और अब जब कि नवीन आर्थिक सुधार लागू किए गए हैं, वैश्वीकरण तथा बाजार व्यवस्था में गरीबों का कोई स्थान नहीं है लेकिन फिर भी शासक और नौकरशाही के लिए जब तक सुविधाजनक होगा ये कार्यक्रम जारी रखे जाएंगे और आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत गरीबी निवारण, गरीबों के साथ एक क्रूर मजाक होगा।

गरीबी उन्मूलन योजनाओं को उस वर्ग द्वारा निर्मित और क्रियान्वित किया गया जिनका सामाजिक–आर्थिक स्तर इन गरीबों से काफी ऊपर था। इन कार्यक्रमों के पीछे यह मान्यता थी कि सभी गरीब एक जैसे हैं जबकि निर्धन परिवारों को दो अलग वर्गों में बांटकर प्रयास करने की आवश्यकता थी – एक, वे गरीब जिनके पास कोई कौशल है और जो स्वरोजगार हेतु उपयुक्त हैं। दो, वे गरीब जिनके पास कोई कौशल या प्रशिक्षण नहीं है तथा जो केवल मजदूरी आधारित रोजगार ही कर सकते हैं।

गरीबी उन्मूलन योजनाओं को उस वर्ग द्वारा निर्मित और क्रियान्वित किया गया जिनका सामाजिक–आर्थिक स्तर इन गरीबों से काफी ऊपर था। इन कार्यक्रमों के पीछे यह मान्यता थी कि सभी गरीब एक जैसे हैं जबकि निर्धन परिवारों को दो अलग वर्गों में बांटकर प्रयास करने की आवश्यकता थी – एक, वे गरीब जिनके पास कोई कौशल है और जो स्वरोजगार हेतु उपयुक्त हैं। दो, वे गरीब जिनके पास कोई कौशल या प्रशिक्षण नहीं है तथा जो केवल मजदूरी आधारित रोजगार ही कर सकते हैं। इन दोनों वर्गों हेतु पृथक–पृथक नीतियां बनाने की आवश्यकता थी। श्री नीलकंठ रथ के शब्दों में, "समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की उत्पादक परिसम्पत्तियां प्रदान करने की नीति उपयुक्त नहीं है, उनको मजदूरी प्रदान करने वाले व्यापक रोजगार कार्यक्रमों की आवश्यकता है।"

इन्दिरा हिरवे का इस सम्बन्ध में मत है कि निर्धनता निवारण की सही युक्ति वह है जिसमें स्वरोजगार और मजदूरी पर रोजगार कार्यक्रमों के मध्य उचित समन्वय किया गया हो।" हमारी योजनाओं में इस प्रकार के समन्वय का अभाव रहा है। उन गरीब परिवारों पर भी ध्यान नहीं दिया गया जिनके पास न तो सम्पत्ति या कौशल है, और न कोई कार्य करने वाला वयस्क है। ऐसे परिवारों के लिए सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों के अन्तर्गत पृथक कदम उठाने की आवश्यकता थी। उन लोगों की समस्याओं पर भी अलग से ध्यान नहीं दिया गया जो सामान्य आर्थिक क्रियाओं में भाग नहीं ले सकते।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का ध्यान मुख्यतः आय सृजन पर ही केन्द्रित रहा है। पौष्टिक आहार, सामाजिक सुरक्षा, परिवार कल्याण तथा न्यूनतम आवश्यकता पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया। यद्यपि आय तथा रोजगार प्रदान करने वाले कार्यक्रम निर्धनों को अतिरिक्त आय उपलब्ध कराते हैं, लेकिन ये कार्यक्रम वर्ष–पर्यन्त पर्याप्त खाद्यान्न की उपलब्धता को सुनिश्चित नहीं करते। खाद्यान्न की उपलब्धता इनकी कीमतों, सहज आपूर्ति तथा आय उपलब्ध होने पर निर्भर करती है। गरीब लोग, जिनके पास अपनी मेहनत के अलावा आय का कोई जरिया नहीं होता, वे श्रम बाजार की स्थितियों के प्रति खास तौर पर संवेदनशील होते हैं।

खाद्य पदार्थों की कीमतों के मुकाबले मजदूरी में कमी होने या बेरोजगारी बढ़ने से इस वर्ग पर मुसीबतों का पहाड़ टूट सकता है। निर्धनता निवारण की नीति मात्र रोजगार प्रदान की नीति नहीं हो सकती। निर्धनता निवारण केवल तभी हो सकता है, जब लोगों को उनके श्रम का उचित प्रतिफल मिले।

ग्रामीण निर्धनों को पूंजी, अनुदान तथा बैंक ऋणों के माध्यम से वित्तीय सहायता देने की अनेक योजनाएं हैं। 50 और 60 के दशक में ग्रामीण साख संस्थाएं मुख्यतः कृषि विकास हेतु ऋण उपलब्ध कराती रही हैं जबकि 70 के दशक से इनकी रुचि निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों में रही है। अनुभवों से यह बात सामने आई है कि छोटे तथा निर्धन वर्ग के लोग अनेक कारणों से औपचारिक साख संस्थाओं से ऋण लेने में असमर्थ रहते हैं। साख संस्थाएं भी निर्धन लोगों को ऋण उपलब्ध कराने में कठिनाई अनुभव करती हैं। इनके पीछे कारण हैं – छोटे–छोटे खातों का बड़े क्षेत्र में बिखराव, सम्पत्ति को वर्गीकृत करने में कठिनाई, आय सृजन के मापदण्डों का सुनिश्चित न होना, साख जरूरतों का आकलन करने की उपयुक्त विधि का अभाव, बढ़ते अवधिपार ऋण आदि। आम धारणा यह है कि सरकार लक्ष्यों के पीछे दीवानी है, तो बैंकों को ऋण वापसी की चिंता है, निर्धनों के विकास की चिन्ता किसी को नही। ऋण स्वीकृत करने की प्रक्रिया ने बेईमानी तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है, निर्धन सहायता हेतु अयोग्य व्यक्तियों का चयन किया गया, ऋण वापसी में असफल लोगों के लिए दण्ड के प्रावधान तथा जवाबदेही का अभाव है। डवाकरा के अन्तर्गत बने हुए समूह निष्क्रिय हो रहे हैं, क्योंकि इनके अन्तर्गत आय सृजन करने वाली व्यावहारिक इकाइयों को शामिल नहीं किया गया, ट्राइसेम के अन्तर्गत प्रशिक्षित युवक न तो स्वरोजगार और न ही कोई अन्य रोजगार प्राप्त कर सके हैं, अन्य निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों की भी यही स्थिति है।

सी.टी. कुरियन ने निर्धनता उन्मूलन के समस्त परिदृश्य की सारभूत आलोचना प्रस्तुत की है। उनका विचार है कि विद्यमान संरचना के रहते हुए चाहे कितनी ही राजनीतिक और प्रशासनिक ईमानदारी से प्रयत्न किए जाएं तो भी गरीबी निवारण में सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि साधनों पर निजी अधिकार है, वितरण असमान है, उनका प्रयोग और अधिक साधनों पर नियंत्रण पाने के लिए किया जाता है। कई बार संरचनात्मक कारकों का प्रभाव इतना गहरा तथा मजबूत होता है कि अत्यन्त सावधानी से बनाई गई युक्तियां और नीतियां भी न केवल असफल सिद्ध होती हैं, बल्कि उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। डा. आर. के सिन्हा के एक अध्ययन के सांख्यिकी सर्वेक्षण से पता लगता है कि राष्ट्रीय आय में एक रुपये की वृद्धि से लाभ अधिकतर ग्रामीण क्षेत्र के धनी वर्ग तथा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को ही होता है, निर्धनों को बहुत कम मिलता है। इस अध्ययन के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि यदि सबसे निर्धन वर्ग को एक रुपया दिया जाता है तो आय में कुल 1.916 रुपये की वृद्धि होती है, जिसमें 0.213 रुपये सबसे गरीब वर्ग को, 0.520 रुपये मध्यम वर्ग तथा 1.183 रुपये सबसे ऊंचे वर्ग को प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त 0.640 रुपये की आय का सृजन शहरी क्षेत्रों में होता है। यद्यपि इस अध्ययन के निष्कर्ष आश्चर्यजनक हैं परन्तु भारत जैसे देश में इसकी सत्यता पर सन्देह नहीं। अतः जब तक मूल ढांचागत परिवर्तन नहीं लाए जाते, उत्पादन सम्बन्धों को बदला नहीं जाता, तब तक गरीबी निवारण कार्यक्रमों के लाभ गरीबों की तुलना में अमीर और मध्यम वर्ग के लोगों को कहीं ज्यादा होंगे तथा देश के गरीबों के लिए बहुत अधिक आशा करना व्यर्थ होगा।

कुछ अर्थशास्त्रियों के मत में आर्थिक संवृद्धि का लाभ स्वतः रिस–रिस कर जनसंख्या के सभी वर्गों को प्राप्त हो जाता है, जिससे गरीबी अपने आप कम हो जाती है। भारतीय कृषि के सन्दर्भ में रिसाव प्रभाव का अर्थ यह लिया जाता है कि भूमि सुधारों के बिना भी कृषि उत्पादन में वृद्धि लाकर गरीबी के स्तर को कम किया जा सकता है। भारत में कृषि उत्पादन में वृद्धि गहन खेती के कारण हुई, इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऐसे परिवर्तन हुए जो गरीबों के लिए हितकर नहीं थे। इसलिए रिसाव प्रभाव कारगर नहीं रहे। आर्थिक संवृद्धि की युक्ति के पूरक के रूप में ऐसे कार्यक्रमों को अपनाए जाने की आवश्यकता है जो गरीबी पर सीधा प्रहार करें। सौभाग्य से पिछले कुछ वर्षों से यह महसूस किया जा रहा है कि गरीबी उन्मूलन तथा सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों को पहले से अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए। परिणामस्वरूप इन कार्यक्रमों पर नए सिरे से विचार किया जा रहा है। इन कार्यक्रमों के साथ–साथ ग्रामीण विकास के कई अन्य कार्यक्रमों को भी हाथ में लेना आवश्यक है जैसे बुनियादी ढांचे का विकास, बेहतर संचार व्यवस्था, उत्पादकता बढ़ाने के

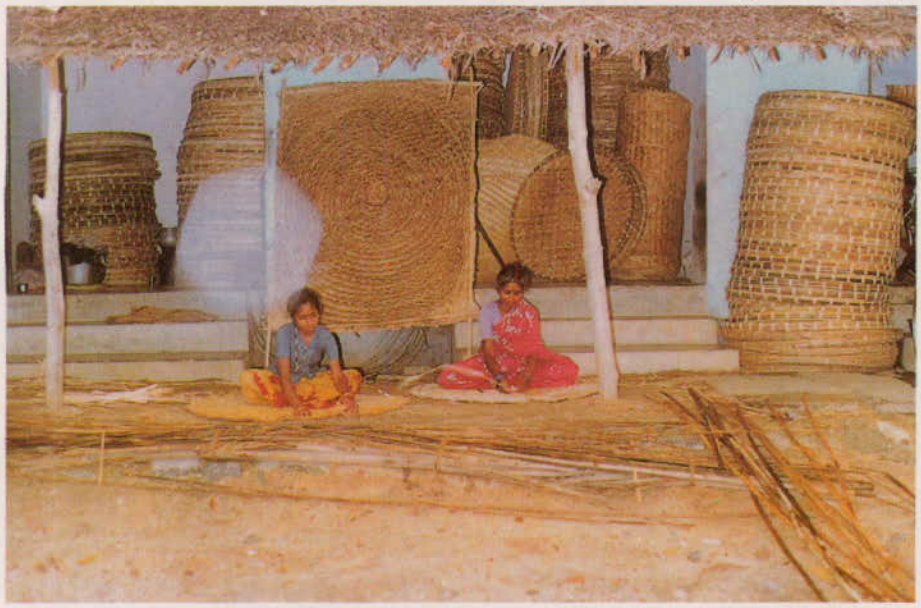

गरीबी दूर करने में स्वरोजगार बहुत सहायक

लिए बिजली की व्यवस्था, पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों का सुनियोजित उपयोग तथा मानव संसाधन विकास। विकास परियोजनाओं को अब विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। विशेषज्ञों की राय में निर्धनता उन्मूलन की विश्व युक्तियों से विकास तेजी से हो सकता है, जबकि उपलब्ध संसाधनों तथा अवसरों को पूर्णरूप से उपयोग किया जाए, प्रत्येक योग्य युवक, स्त्री, पुरुष अपनी उच्चतम अपेक्षाओं तक शिक्षा जारी रख सके, कृषि में सुधार लाने की तकनीकों और सूचनाओं का प्रसार तथा प्रचार करने हेतु एक साझा समंक बैंक (Data Bank) हो तथा निम्न आय वर्ग के लोगों की आर्थिक संवृद्धि हेतु अधिक व्यापक आधार मिल सके।

सरकारी आय उत्पादक कार्यक्रमों को वास्तविक रूप से उपयोगी बनाने हेतु कुछ पूरक उपाय करने की भी आवश्यकता है, इससे गांवों में उपलब्ध कौशल का भली प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। इन सभी प्रयासों में गैर सरकारी संगठनों को भी शामिल करना जरूरी है। मौजूदा आर्थिक स्थिति में गरीबी दूर करने की दिशा में राज्य की जिम्मेदारी तो रहेगी ही, निगमित क्षेत्र का योगदान भी बढ़ाना होगा। मुक्त बाजार की व्यवस्था से लाभान्वित निगमित क्षेत्र को निर्धनों की दशा सुधरने के उद्देश्य से शिक्षा, प्रशिक्षण, उत्पादन सुविधाओं तथा विपणन जैसे क्षेत्रों में योगदान के माध्यम से ग्रामीण लोगों की क्षमताओं को विकसित करने हेतु सरकार की मदद के लिए आगे आना चाहिए। इस क्षेत्र को स्वयं अपनी भलाई तथा सरकारी खजाने पर बोझ कम करने हेतु दान दया की प्रवृत्ति छोड़कर पूंजी निवेश का दृष्टिकोण अपनाना होगा।

गरीबी तब तक दूर नहीं हो सकती जब तक लोग स्वयं इससे जुड़ी समस्याएं समझने और उन्हें हल करने में सहयोग नहीं देते। लोगों को बेहतर जीवन के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करने तथा स्थानीय विकास की योजनाएं बनाकर उनकी क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता है। ये योजनाएं तभी सफल हो सकती हैं, जब इन्हें लागू करने वाले अधिकारी दूर बैठे प्रशासकों के प्रति नहीं बल्कि जनता के प्रति जवाबदेह हों। ऐसे वातावरण सृजन की आवश्यकता है जिसमें निर्धनों की क्षमताओं का विकास हो सके। परंपरागत अवधारणा के अनुसार निर्धन वे व्यक्ति माने जाते हैं जो बुनियादी जरूरतों से वंचित होते हैं तथा जिन्हें सहानुभूति और दान दया की आवश्यकता होती है, जबकि वास्तविकता यह है कि उनमें किसी न किसी प्रकार की तकनीकी जानकारी अथवा उद्यमशीलता होती है, उनको अपने निकटतम पर्यावरण की पूर्ण जानकारी होती है, वे अति परिश्रमी होते हैं उनके पास कमी होती है तो संसाधनों की, वे गरीब इसलिए होते हैं कि उन्हें उनके श्रम का उचित प्रतिफल नहीं मिलता। अतः महती आवश्यकता उन्हें पूंजी और संसाधन उपलब्ध कराने की है।

एक आशंका यह रही है कि निर्धनता निवारण में अनुदान और कल्याण सहायता हेतु भारी धनराशि की आवश्यकता होती है, लेकिन बंगलादेश के अत्यन्त सफल ग्रामीण बैंक का उदाहरण इस आशंका को निर्मूल सिद्ध करता है। ये देखा गया है कि आवश्यक पूंजी भले ही थोड़ी हो, निर्धन लोग अपने जीवन–स्तर को परिवर्तित करने में कामयाब रहे हैं। व्यावसायिक बैकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों तथा सहकारी संस्थाओं द्वारा, ऋण योजना में सुधार की पर्याप्त गुंजायश है। लेन देन लागत कम करके तथा निम्न आय वर्गोन्मुख प्रवृत्ति को विकसित करके सहायता कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सुधार किया जा सकता है। स्वसहायता दल तथा गैर सरकारी संस्थाएं इस प्रणाली को उन गरीबों के पक्ष में कर सकती हैं जो संगठित साख संस्थाओं तक नहीं पहुंच पाते। निर्धनता निर्मूलन और स्वरोजगार को प्रेरित करने वाली स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण स्वरोजगार योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना तथा अन्य योजनाओं के अन्तर्गत जहां बैकों का दायित्व बनता है कि वे अपने आवंटित लक्ष्यों की समय से पूर्ति सुनिश्चित करें, वहीं उन्हें यह भी देखना है कि इन योजनाओं का लाभ केवल पात्र व्यक्तियों को ही मिले ताकि परिसम्पत्तियों का सृजन हो सके तथा उत्पादकता और आय में वृद्धि हो सके।

विश्व बैंक की नीतियां भी श्रम–प्रधान विकास योजनाओं को प्रोन्नत करने के पक्ष में हैं। श्रम गरीब व्यक्ति की सबसे कीमती परिसम्पत्ति होती है। लघु उद्योगों को भी साथ ही प्रोत्साहित किया जाए क्योंकि इनमें कम पूंजी की जरूरत होती है तथा रोजगार तथा आय की अपार संभावनाएं होती हैं। गरीबों के लिए समाज सेवा का भी प्रावधान किया जाए, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं, परिवार नियोजन, पोषण, प्राथमिक शिक्षा आदि पर भी ध्यान दिया जाए।

जनसंख्या के लगातार बढ़ते दबाव की स्थिति में जबकि खेतों का आकार लगातार छोटा होता जा रहा है, स्वरोजगार उद्यमों या मजदूरी के रोजगार कार्यक्रमों पर निर्भरता सही नहीं है। जी. पार्थसारथी के मत में निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रमों को सशोधित करने की आवश्यकता है ताकि भूमि और जल संसाधनों का विकास किया जा सके, शोषणकारी प्रवृत्तियों को रोका जा सके तथा क्रयशक्ति का हस्तान्तरण कम आय वाले परिवारों के लाभ के लिए किया जा सके। गरीबी निवारण के कार्यक्रमों की सफलता जांचने की यह कसौटी कि कितने लोग गरीबी रेखा को पार कर सके हैं, उपयुक्त नहीं है। इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि गरीबी रेखा से नीचे रह रहे विभिन्न लोगों के आय स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

सामाजिक सहायता योजनाओं पर इस प्रकार जोर दिया जाना निसंदेह राष्ट्र हित में है क्योंकि इनके जरिये हम इस कटु सत्य से मुक्ति पा सकेंगे कि हमारी जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा आज भी बुनियादी सुविधाओं से वंचित है तथा गरीबी रेखा के नीचे जीवन बिता रहा है। हम अपनी उपलब्धियों पर तभी गर्व कर सकते हैं, जब समाज के प्रत्येक वर्ग, विशेषकर पिछड़े और अभावग्रस्त वर्ग को समान सुविधाएं उपलब्ध करा सकें। यह निसंदेह एक दुरूह कार्य है। सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों के साथ–साथ यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि स्वैच्छिक संस्थाएं सरकार को इन प्रयासों में सक्रिय सहयोग दें और इस बात का भी हर संभव प्रयत्न करें कि योजनाओं का लाभ उन व्यक्तियों तक पहुंच सके जिन्हें ध्यान में रखकर ये योजनाएं बनाई गई हैं। हम तभी अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकेंगे। ❑

आजादी के बाद गांवों का विकास

डा0 गौरीशंकर राजहंस*

लेखक ने इस लेख के माध्यम से इस बात का विश्लेषण किया है कि पिछले 50 वर्षों में हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में अपेक्षित सुधार क्यों नहीं हो सका है। लेखक ने इसके लिए भ्रष्टाचार और बढ़ती आबादी को जिम्मेदार ठहराया है। लेखक ने चीन में पिछले पचास वर्षों में प्रगति के साथ तुलना करते हुए बताया है कि चीन में भ्रष्टाचार नहीं है, अनुशासन है, इस कारण भारत से ज्यादा आबादी के बावजूद प्रगति की दौड़ में वह कहीं आगे निकल गया है। लेखक ने सुझाव दिया है कि यदि ग्रामीण विकास पर होने वाले खर्च में पारदर्शिता लाई जाए तो ग्रामीण भारत का नक्शा बदल सकता है।

आजादी मिले भारत को 53 वर्ष हो गए। यह स्वाभाविक है कि भारत का हर नागरिक यह सोचे कि पिछले 53 वर्षों में भारत ने क्या उपलब्धियां हासिल कीं। खासकर ग्रामीण विकास के क्षेत्र में। और यदि इस क्षेत्र में भारत ने संतोषजनक प्रगति नहीं की तो इसके क्या कारण थे? क्यों हम अन्य देशों की तुलना में पिछड़ गए? पीछे मुड़कर देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि कृषि, उद्योग और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में भारत की प्रगति ठीक–ठाक रही। परन्तु जब ग्रामीण विकास की बात आती है तब हमें मानना पड़ता है कि इस क्षेत्र में विकास बहुत ही असंतोषजनक रहा।

चीन का उदाहरण

भारत ने 1947 में आजादी प्राप्त की थी और उसके पड़ोसी देश चीन ने 1949 में। इन दिनों चीन अपनी आजादी की पचासवीं वर्षगांठ मना रहा है। एशिया के दो ही बड़े देश हैं, भारत और चीन। जब भी चीन की चर्चा होती है तो सारी दुनिया में लोग बरबस यह पूछ बैठते हैं कि गत 50 वर्षों में चीन ने अप्रत्याशित प्रगति कैसे की और भारत इस अरसे में पिछड़ क्यों गया? जिन दिनों चीन को आजादी मिली थी उन दिनों वहां के नागरिकों की हालत भारत से बहुत अधिक बदतर थी। भारत तो केवल अंग्रेजों की गुलामी सहता रहा परन्तु चीन पर पश्चिम के अनेक देशों का राज रहा और इन देशों ने चीन के विभिन्न क्षेत्रों में अपना साम्राज्य कायम किया जिसे 'एरिया आफ इन्फ्लूएंस' कहते थे। यही नहीं, इन देशों ने अपने क्षेत्रों में चीनियों का भयानक शोषण किया। इन विकसित देशों ने अधिकतर चीनियों को अफीमची बना दिया। यहां एक दिलचस्प तथ्य वर्णन करने योग्य है कि चीन के अफीमचियों के लिए अधिकतर अफीम भारत से ही जाती थी। सारे संसार के लोग चीन को 'सिक मैन आफ एशिया' अर्थात् एशिया का बीमार आदमी कहकर उसका उपहास करते थे। उसी चीन ने योग्य नेतृत्व के कारण सारी सामाजिक और आर्थिक खामियों को जड़ से दूर कर दिया और आज चीन, आजादी के पचास वर्षों के बाद, पश्चिम के किसी भी संपन्न देश से विकास के मामले में टक्कर लेने को तैयार है।

एक वह समय था जब चीन सारी दुनिया

* पूर्व सांसद एवं पूर्व राजदूत

में मजाक का साधन बन गया था। चीन के बने हुए सामानों को दुनिया में कहीं बाजार नहीं मिलता था और आज स्थिति यह है कि संसार के सभी आर्थिक दृष्टिकोण से अग्रणीय देश चीन में निवेश करना चाहते हैं। यही नहीं, चीन में बनी हुई उपभोक्ता वस्तुओं की क्वालिटी इतनी अच्छी है कि सारी दुनिया में उनकी मांग है। चीन में भारत की तरह ही प्रचुर प्राकृतिक सम्पदाएं हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वहां के मजदूर अत्यन्त ही अनुशासनप्रिय हैं। हड़ताल और तालाबन्दी का वहां नामोनिशान नहीं है। अतः जो वस्तु चीन में निर्यात के लिए तैयार होती है उसका लागत खर्च बहुत ही कम होता है। इसी कारण सारे संसार में चीन से आयात होने वाली उपभोक्ता वस्तुओं की कीमत बहुत कम होने के कारण मांग बहुत अधिक है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि विदेशी निवेशकों को भारत की तुलना में चीन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भारत में किसी भी विदेशी निवेशक को भाषा की दिक्कत नहीं है। संसार में सर्वत्र लोगों की धारणा यह है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था होने के कारण सरकारी कर्मचारी मनमानी नहीं कर सकते हैं। भारत में न्यायपालिका बहुत ही मजबूत है। अतः कोई भी विदेशी निवेशक इस बात से आश्वस्त रहता है कि उसे भारत में न्याय मिलेगा ही। यही नहीं, भारत में समाचार पत्र और मीडिया बहुत ही स्वतंत्र हैं। निवेशकों के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है? अतः कहीं किसी स्तर पर अन्याय होने से वे सरकार की खामियों को मीडिया के द्वारा जगजाहिर कर सकते हैं। ये सभी बातें विदेशी निवेशकों के मन में आत्मविश्वास पैदा करती हैं। इसके विपरीत चीन में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कोई भी विदेशी आसानी से चीनी भाषा नहीं सीख सकता है। वहां पर कोई झगड़ा होने पर न्यायपालिका से न्याय मिलने की कोई उम्मीद नहीं रहती है। मीडिया जिसमें समाचार पत्र, रेडियो और टीवी सभी शामिल हैं, चीन में सरकार के पूर्ण नियंत्रण में है। अतः कोई झगड़ा होने पर एक विदेशी निवेशक मीडिया द्वारा उसके साथ हो रहे अन्याय को जगजाहिर नहीं कर सकता है।

इतना सब कुछ होने के बावजूद भी संसार के विकसित देश अधिक से अधिक निवेश चीन में ही करना चाहते हैं, भारत में नहीं। यह एक शोचनीय विषय है।

जो लोग चीन गए हैं और खासकर चीन के ग्रामीण क्षेत्रों का भ्रमण किया है वे यह देखकर हैरान रह गए हैं कि चीन के गांवों का नक्शा ही बदल गया है। खेतों में सालों भर भरपूर फसल होती है और यह तब होता है जब चीन में अधिकतर खेत सरकार के हैं, निजी किसानों को पिछले चार पांच वर्षों से कहीं–कहीं जमीन का स्वामित्व मिलने लगा है। परन्तु सरकारी जमीन पर भी चीन के मेहनती किसान और मजदूर इस तरह काम करते हैं मानो वह उनकी अपनी जमीन हो और पैदावार का लाभ उन्हें मिलने वाला हो।

भारत में विदेशी निवेशक को भाषा की दिक्कत नहीं है। संसार में सर्वत्र लोगों की धारणा यह है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था होने के कारण सरकारी कर्मचारी मनमानी नहीं कर सकते हैं। भारत में न्यायपालिका बहुत ही मजबूत है। अतः कोई भी विदेशी निवेशक इस बात से आश्वस्त रहता है कि उसे भारत में न्याय मिलेगा ही। यही नहीं, भारत में समाचार पत्र और मीडिया बहुत ही स्वतंत्र हैं। निवेशकों के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है? अतः कहीं किसी स्तर पर अन्याय होने से वे सरकार की खामियों को मीडिया के द्वारा जगजाहिर कर सकते हैं।

इसका एक प्रमुख कारण यह है कि चीन में हर किसान और मजदूर अपने कर्तव्यों के प्रति बहुत ही जागरूक है। वह यह मानकर चलता है कि यदि उसकी मेहनत से फसल अच्छी हुई तो उसका लाभ पूरे देश को होगा। भारत में ऐसा कुछ नहीं है। यहां पर शत–प्रतिशत जमीन का स्वामित्व निजी हाथों में है। परन्तु कुछ तो आलस्य के कारण और कुछ सरकारी नीतियों में खामियों के कारण चीन की तुलना में भारत में भरपूर फसल पैदा नहीं हो पाती है। यह सही है कि अनाज के मामले में जनसंख्या बढ़ जाने के बावजूद भी भारत ने स्वावलम्बन प्राप्त कर लिया है परन्तु यदि लोग मेहनती होते और सरकार की नीतियां ढुलमुल नहीं होतीं तो संभवतः फसलों की पैदावार कई गुणा अधिक होती और भारत का अनाज भारी मात्रा में विदेशी मंडियों में बेचा जाता और इस तरह कृषि क्षेत्र से ही भारत को भरपूर विदेशी मुद्रा निर्यात के रूप में मिल गई होती। परन्तु ऐसा कुछ हुआ नहीं।

भ्रष्टाचार एक बड़ी समस्या

आजादी के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए अनेक योजनाएं कार्यान्वित की गईं जिनमें एनआरईपी, आरएलईजीपी, आईआरडीपी आदि प्रमुख थीं। परन्तु जब इन योजनाओं का कार्यान्वयन हुआ तब यह पाया गया कि बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार के कारण इसका लाभ गरीब मजदूरों तक नहीं पहुंच पाया। नतीजा यह हुआ कि रोजगार की खोज में लोग बड़े शहर, खासकर दिल्ली, कलकत्ता, चेन्नई और मुम्बई की तरफ भागने लगे। वहां उन लोगों को बहुत ही अपमानित होकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। दिल्ली और पंजाब में बिहार तथा उत्तर प्रदेश के जो मजदूर गए हैं उन्हें घोर अपमान सहकर नाममात्र की मजदूरी में काम करना पड़ता है। उनके सामने लाचारी यह है कि गांव में उनके लायक रोजगार के कोई अवसर हैं ही नहीं। अतः गांवों के मजदूर शहर आकर भी गरीब के गरीब ही रह गए। इस सिलसिले में याद दिलाना आवश्यक है कि गांवों के निर्धन लोगों के लिए, खासकार अनुसूचित जाति और जनजाति तथा दलितों के लिए सरकार ने इंदिरा आवास योजना जैसी कारगर योजना बनाई। परन्तु जब इन योजनाओं के कार्यान्वयन का समय आया तो पाया गया कि स्वार्थी तत्वों ने काफी पैसे मार लिए और इन गरीब और भूमिहीनों को आवास नहीं मिल पाया।

ग्रामीण क्षेत्रों में भरपूर सिंचाई हो और इसके लिए बड़ी नदियों को बांधकर उनसे नहर निकालकर सिंचाई की जाए जिससे भरपूर फसल की पैदावार हो, यह अनुभव भारत में चीन से ही आया। चीन में "हुआंग हो" जैसी विकराल नदियां थीं जो हर वर्ष चीन की एक चौथाई आबादी को तबाह कर देती थीं। चीन की जनता ने कुशल नेतृत्व की देखरेख में इन सभी प्रलयकारी नदियों को बांधा, उनसे सिंचाई की और भरपूर बिजली भी प्राप्त की। चीन के इन बांधों में एक बार

भी दरार नहीं आई। क्योंकि सारा काम बड़ी ईमानदारी और मजबूती से किया गया। इसके विपरीत भारत में जहां–जहां बड़ी नदियों को बांधा गया, खासकर सिंचाई के लिए,,, वे सभी बांध आज ठीक अवस्था में नहीं हैं। उनमें दरारें आ गई हैं और लोग पहले की तरह ही बरसात के मौसम में बाढ़ से तबाह हो जाते हैं। गांवों के विकास की योजनाओं में आजादी के बाद अरबों–खरबों रुपये खर्च हुए। परन्तु आम जनता को उससे कोई लाभ नहीं मिला। अधिकतर धन बिचौलियों की जेब में चला गया। दुर्भाग्य की बात है कि सभी इस सच्चाई को जानते हैं। परन्तु इन स्वार्थी तत्वों के खिलाफ कदम उठाने का साहस नहीं कर पाते हैं। इन कारणों से ही गांवों की आम जनता की हालत बद से बदतर हो गई है।

इस सिलसिले में एक साधारण–सी बात की ओर हमारा ध्यान बरबस चला जाता है। आजादी के 53 बरसों बाद भी हम जनता को पीने योग्य एक गिलास स्वच्छ जल नहीं दे पाए हैं। गांवों में स्थिति इतनी भयावह है कि एक ही तालाब में मवेशी भी नहाते हैं, पुरुष और महिलाएं भी स्नान करती हैं, लोग शौच भी करते हैं और उसी गंदे पानी को पीते भी हैं। अतः वे आसानी से हैजा, डायरिया, आंत्रशोध, टाइफाइड और दूसरी सैंकड़ों बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। स्थिति बहुत ही विस्फोटक है। भ्रष्टाचार समाज की जड़ में इतनी दूर तक फैल गया है कि यह समझ में नहीं आता है कि कब इस स्थिति में सुधार आएगा?

ऐसा नहीं है कि गांवों में विकास नहीं हो सकता है। यदि विकास पर होने वाले खर्चों में पारदर्शिता ला दी जाए तो किसी भी असामाजिक तत्व की यह हिम्मत नहीं होगी कि वह जनता के पैसे को बन्दूक की नोक पर उड़ा कर ले जाए। परन्तु स्वार्थी तत्व जिनमें ठेकेदार हैं, सरकारी अफसर हैं और इंजीनियर हैं कभी नहीं चाहेंगे कि विकास कामों में हो रहे खर्च में पारदर्शिता लाई जाए।

बढती जनसंख्या,सबसे बड़ी समस्या

गांवों के विकास में जो सबसे बड़ी समस्या है वह जनसंख्या का बेतहाशा बढ़ते जाना। आज भारत की आबादी एक अरब से भी ज्यादा है और यदि यही रफ्तार रही तो 2020 में हमारे देश की आबादी चीन की आबादी से भी अधिक हो जाएगी। यह सचमुच बड़े दुर्भाग्य की बात है कि पिछले 53 वर्षों में किसी भी सरकार ने देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या पर भरपूर ध्यान नहीं दिया। संभवतः इसका एक कारण यह भी था कि इमरजेंसी के दौरान नसबंधी के बहाने आम जनता पर ज्यादतियां हुईं। उसे अनेक तरीकों से परेशान किया गया। इसलिए उस अनुभव के कारण किसी भी सरकार ने दुबारा से जनसंख्या नियंत्रण नीति अपनाने का प्रयास नहीं किया। आज स्थिति बहुत ही विस्फोटक है और यदि जनसंख्या की बढ़ोतरी पर शीघ्र रोक नहीं लगाई गई तो बढ़ती हुई जनसंख्या विकास से मिलने वाले सारे लाभों को देखते ही देखते डकार जाएगी।

बात जब जनसंख्या की करते हैं तो अपना अनुभव यह बताता है कि कुछ तो अशिक्षा के कारण और कुछ अन्ध विश्वास की वजह से भारत की जनसंख्या बढ़ती ही गई। आज भी गांवों में परिवार नियोजन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। भारत के गांवों में 50 प्रतिशत से भी अधिक लोग अशिक्षित हैं। वे अंधविश्वास के शिकार हैं। उन्हें यह गलतफहमी है कि बच्चे भगवान की देन हैं। इसी कारण परिवार को सीमित करने के लिए वे कोई भी प्रयास नहीं करते हैं, इतना ही नहीं, आम लोगों में एक गलत धारणा यह भी है कि यदि परिवार में लड़कों का जन्म नहीं होगा तो वंश आगे नहीं बढेगा। इसी वजह से एक लड़के की चाह में गांव के अशिक्षित लोग कभी–कभी आठ–दस लड़कियों को जन्म दे देते हैं। गरीब और अशिक्षित लोगों में एक और गलत धारणा है कि परिवार में जितने अधिक बच्चे पैदा होगें उतने ही अधिक कमाने वाले हाथ तैयार हो जाएंगे और घर में सुख–समृद्धि आएगी। उन्हें यह बात समझ में ही नहीं आती है कि परिवार में अधिक बच्चों के जन्म के कारण वे अनजाने में गरीबी को आमंत्रित कर रहे हैं।

गांवों में पचास प्रतिशत से अधिक लोग अशिक्षित हैं और अशिक्षित लोगों में महिलाओं की संख्या अधिक है जो श्रमिकों का काम कर रही हैं। उनका बाहर की दुनिया से कोई संपर्क नहीं है। परिवार को सीमित करने में उनका कोई दखल नहीं है। इसी कारण पिछले 53 वर्षों में ये ग्रामीण महिलाएं और अधिक पिछड़ गईं और यदि यही रवैया रहा तो निकट भविष्य में भी इनके उद्धार का कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता है। अधिक बच्चों का जन्म परिवार में गरीबी तो लाता ही है, माताओं के स्वास्थ्य पर भी इसका बहुत बुरा असर पड़ता है। गांवों में तो वैसे भी चिकित्सा की सुविधा नहीं के बराबर है। अतः इन महिलाओं में अकाल मृत्यु की दर भी बहुत अधिक बढ़ गई। यही नहीं, गांवों के लोग इस सत्य को समझ ही नहीं पा रहे हैं कि बढ़ती हुई आबादी बेरोजगारी को जन्म देती है। एक बेरोजगार युवक अपने परिवार तथा पूरे समाज के लिए अभिशाप सिद्ध होता है। और कार्यक्रमों को यदि हम थोड़ी देर के लिए नजरअन्दाज भी कर दें तो हमें यह मानना होगा कि चीन ने बहुत ही कुशल तरीके से अपने यहां बढ़ती हुई आबादी पर रोक लगा दी। यही कारण है कि आज जब कि भारत में आम आदमी बहुत ही गरीब है, चीन में आम आदमी की सालाना आमदनी 860 डालर है। यहां यह याद रखने की बात है कि यह रकम पिछले दस वर्षों में दुगुनी हो गई है। भारत में जबकि 50 प्रतिशत निरक्षर लोग हैं, चीन में केवल 13 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। वे लम्बी उम्र तक स्वस्थ और सक्रिय रहते हैं। भारत में विकास की दर मुश्किल से 6 प्रतिशत है जबकि चीन में करीब–करीब 10 प्रतिशत है। चीन पर कोई विदेशी कर्ज नहीं है। चीन में विदेशी मुद्रा का भंडार 120 बिलियन डालर है। जबकि अपने यहां रुपये का मूल्य रोज गिरता जा रहा है और विदेशी मुद्रा का भंडार तेजी से कम हो रहा है।

हम चीन से, खासकर चीन के गांवों से, भारत के गांवों की तुलना करें या नहीं करें, सारा संसार तो करता ही है। हमने पिछले 53 वर्षों में बहुत खोया। पीछे मुड़कर देखने से ऐसा लगता है कि भारत ने अनेक गलतियां की हैं। परन्तु उन गलतियों पर पछताने से कोई लाभ नहीं हैं। अभी भी देश का, खासकर भारत के गांवों का समुचित विकास हो सकता है यदि केवल एक मूल मंत्र पर ध्यान दिए जाए। सारे विकास के खर्चों का सही ढंग से लेखा–जोखा हो। उसमें पारदर्शिता लाई जाए जिससे देश का हर नागरिक यह समझ सके कि विकास का पैसा किस प्रकार खर्च किया जा रहा है। यदि जनता, खासकर गांवों में रहनें वाली जनता, जागरूक हो जाए तो निश्चित रूप से भारत का भविष्य उज्ज्वल हो जाएगा। ❑

ग्रामीण आवास समस्या एक नीतिगत समीक्षा

श्री एस.एन. मिश्रा*

ग्रामीण भारत में आवास की समस्या भी गम्भीर रूप धारण करती जा रही है। ताजा अनुमानों के अनुसार सन् 2000 तक ग्रामीण क्षेत्रों में 244.70 लाख मकान निर्माण की या कच्चे मकानों को बनाने की जरूरत होगी। लेखक के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों की इस समस्या को शुरू में गम्भीरता से नहीं लिया गया। 1980 के दशक के बाद ही इस तरफ ध्यान दिया गया और इंदिरा आवास योजना शुरू की गई। इस योजना के तहत अब तक करीब 62 लाख मकान बनाए जा चुके हैं। अब इस दिशा में क्या प्रयास चल रहे हैं, पढ़िए इसकी जानकारी इस लेख में।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद ग्रामीण विकास से संबंधित बहुत से प्रयास अभी तक किए जा चुके हैं। लेकिन जब हम पचास वर्षों के ग्रामीण विकास का लेखा–जोखा करने बैठते हैं तो पूर्ण निराशा तो नहीं कह सकते लेकिन अपेक्षित मंजिल के नजदीक भी अभी तक हम नहीं पहुंच पाए हैं। यह चिंता का विषय तो है परंतु निराश होने की आवश्यकता नहीं है। यूं तो ग्रामीण विकास से जुड़े अनेक प्रश्न हैं जैसे – निर्धनता, स्वरोजगार की कमी, कुटीर उद्योगों की कमी, स्वच्छ जल का अभाव, शौचालयों का अभाव, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, समुचित सड़कों का अभाव, ग्रामीण बिजली व्यवस्था की दयनीय हालत आदि। लेकिन इस संक्षिप्त लेख में ग्रामीण आवास की समस्या पर ध्यान इसलिए दिया गया क्योंकि आवास व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। अतः यदि राष्ट्रीय ग्रामीण आवास नीति को सफल बनाना है तो उसके लिए आर्थिक, प्रशासनिक और राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करना ही होगा। हम एक वैज्ञानिक ग्रामीण आवास नीति की बात करें तो उसके अंदर जो महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, वे हैं – भूमि अधिग्रहण, जमीन रखने की निर्धारित सीमा के कानून में बदलाव, वित्तीय सहायता, पर्यावरण समस्या, मकान निर्माण के लिए गुणवत्तापूर्ण सामग्री, पारिवारिक नियम, बढ़ती हुई आबादी तथा बड़े गांवों और छोटे शहरों के बीच कड़ी स्थापित करना आदि।

यूं तो ग्रामीण आवास की समस्या सिर्फ हमारी ही नहीं है बल्कि विश्व के प्रायः सभी अविकसित राष्ट्रों की है। बहुत से विकसित राष्ट्रों को भी इस समस्या से जूझना पड़ रहा है और शायद यही कारण था कि 1987 को आवासविहीनों को आवास देने का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया और उस वर्ष में विभिन्न सरकारों ने अपनी नीतियों में भारी बदलाव किया और नए–नए आवासीय कार्यक्रमों की भी घोषणा की। लेकिन दुर्भाग्य की बात तो यह है कि इस अन्तर्राष्ट्रीय संकल्प के एक दशक से भी अधिक वर्षों के बाद भी समस्या

* ग्रामीण विकास के प्रोफेसर, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली

पर कोई प्रभावकारी असर नही पड़ा है और सरकारी कार्यक्रम तथा नीतियां समस्या से जूझने में सफल नहीं रहीं।

प्रश्न उठता है कि ये नीतियां और कार्यक्रम मनोवांछित फल क्यों नहीं दे पा रहे हैं। यदि हम इस पर विचार करते हैं तो जो पहली समस्या हमारे सामने आती है वह इच्छा–शक्ति की कमी की है। सरकार इस समस्या से निपटने के लिए पूरी मानसिकता के साथ जूझ नहीं पाती। यहां एक और बड़ी समस्या यह है कि बहुत सारी स्वयंसेवी संस्थाएं तथा कुछ राजनीतिज्ञ ग्रामीण आवास को मौलिक अधिकार के रूप में देखना चाहते हैं। लेकिन सवाल यह है कि कौन–कौन–सी समस्याओं को मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाए – भोजन, पानी, वस्त्र, रोजगार आदि इन सारी चीजों को मौलिक अधिकार के अन्दर रख देने से क्या इस समस्या का समाधान हो जाएगा? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या संविधान में जो मौलिक अधिकार पहले से ही हैं उसका समुचित उपयोग आम आदमी कर पाता है? अतः समस्या का समाधान समस्या को कानूनी जामा पहनाने से नहीं होगा। उसके लिए हमें कटिबद्ध होकर व्यावहारिक नीतियां अपनानी होंगी, सभी स्तर पर जनता की सहभागिता हासिल करनी होगी। स्थान और जलवायु संबंधी वातावरण को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण आवास का अलग–अलग क्षेत्रों के लिए खाका तैयार करना होगा। समुद्र से सटे क्षेत्रों के लिए वैसे आवासों का निर्माण करना होगा जोकि समुद्र में आए हुए तूफान को झेल सकें। पहाड़ी क्षेत्रों के लिए ऐसे आवासों का निर्माण करना होगा जो अपने बचाव में भू–स्खलन तथा भूकंप के झटकों को झेल सकें। समतलीय क्षेत्रों के लिए ऐसे आवासों का निर्माण करना होगा जो मौसम और वातावरण के अनुकूल हों। इन्हीं से जुड़ी और कुछ समस्याओं पर ध्यान देना होगा जैसे – पेयजल की समस्या, स्वच्छता और शौचालयों पर विशेष बल आदि। यदि इस तरह के संरचनात्मक कदम हम उठाते हैं तभी इस समस्या का समाधान हो सकता है।

ऊपर जो भी बातें कही गई हैं वो आदर्श की बातें नहीं हैं वे व्यावहारिकता और अनुभव के मापदण्ड पर शायद खरी उतरें। क्योंकि हम सभ्य समाज और राज्य की बातें करते हैं तो समाज और राज्य की जिम्मेवारी है हमारी समस्याओं का समाधान करने की, लेकिन उसके लिए हमारा भी फर्ज बनता है कि सच्चे दिल से समाज और राष्ट्र के आदेशों तथा आदर्शों का पालन करें। क्योंकि मात्र सरकारी

यदि हम इस पर अवलोकन करते हैं तो जो पहली समस्या हमारे सामने आती है वह इच्छा शक्ति की कमी की है और सरकार इस समस्या से निपटने के लिए पूरी मानसिकता के साथ जूझ नहीं पाती।

सहायता से ही हम ग्रामीण आवासीय समस्या का समाधान नहीं कर सकते। अतः सरकार पर हमें ग्रामीण आवास का बोझ उन्हीं लोगों तक सीमित रखना चाहिए जो गरीबी रेखा के नीचे हैं लेकिन गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का भी कर्तव्य बनता है कि वे सरकारी राशि में अपना सहयोग इस प्रकार दें जिसकी बदौलत उनकी और भी मूलभूत समस्याओं जैसे – आवास के अन्दर निम्नतम सुविधाएं, पेयजल, शौचालय, सही मात्रा में हवा और रोशनी की व्यवस्था हो, साथ ही साथ पर्यावरण को स्वस्थ बनाने के लिए प्रकृति के प्रति मित्रत्व व्यवहार करना होगा।

वास्तविकता तो यह है कि ग्रामीण आवासीय समस्या से जूझने के लिए, वैसे लोग जो स्वयं खर्च करने की क्षमता रखते हैं तथा अन्य सभी वर्गों के लोगों के बीच साझेदारी का वातावरण कायम करना आवश्यक है।

इस नीति की सफलता के लिए जो आवश्यक तत्व हैं, वे हैं – (अ) भूमि का अधिग्रहण, (ब) भूमि का विकास, (स) आर्थिक सहायता, (द) भवन निर्माण का काम, (घ) असमानता की घेराबन्दी आदि। इस संदर्भ में राज्य की जो भूमिका है कि वह भूमि का अधिग्रहण, उसका विकास तथा समुदाय के लोगों को प्रोत्साहित करे कि वे अपना खुद का आवास बनाएं। उसके साथ ही राज्य का यह भी कर्त्तव्य बनता है कि ऊपर के सभी पांचों तत्वों की व्यवस्था कर समाज के कमजोर वर्ग को आवासीय सुविधा मुहैया कराए। समाज के अन्य वर्गों के लिए राज्य का कर्तव्य है कि वह उन्हें एक सहयोगी संस्था का निर्माण करने को प्रोत्साहित करे तथा आपसी बचत योजना के माध्यम से अपने लिए आवास खुद तैयार करने के लिए प्रोत्साहित करे।

1985 में राष्ट्रीय भवन संगठन का अनुमान था कि पूरे देश भर में 245 लाख आवासीय भवनों की कमी है। लेकिन कुछ अन्य शैक्षणिक संगठन, गैर सरकारी संगठन तथा सांख्यिकी विशेषज्ञों ने इस संख्या से दुगुने मकानों की कमी का अनुमान लगाया था।

इस समस्या से निपटने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि आवास की समस्या को गंभीरता के साथ लिया जाए। इसके लिए राज्य की ओर से अपेक्षित है, नए कानूनों को बनाना, जमीन की कीमत को एक खास सीमा तक ही सीमित रखना, भौतिक तथा आर्थिक साधनों को प्रचुर मात्रा में मुहैया करना, हाशिये पर खड़े गरीब परिवारों को प्राथमिकता देना तथा भूमि सीमा कानून का कठोरता से पालन करना।

इस संदर्भ में सातवीं पंचवर्षीय योजना के परिपत्र की कुछ बातें अवलोकनीय हैं, क्योंकि इस योजना के बाद ही हमारी निगाह विशेष रूप से ग्रामीण आवासीय समस्या पर गई और तब से आज तक अनेक प्रयोग इस दिशा में किए जा रहे हैं, जो इस प्रकार हैं –

"जहां तक व्यक्ति की मूलभूत प्राथमिक आवश्यकताओं का प्रश्न है उसमें आवास, भोजन और वस्त्र के बाद तीसरे नम्बर पर आता है। एक सभ्य और स्वस्थ जीवन के लिए आवास के कुछ निम्नतम मानदण्ड होने चाहिए। अतः हमारे जैसे गरीब समाज में इन निम्नतम मानदण्डों को हासिल करना अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बना हुआ है। यही कारण है कि आवास हमारी सातवीं पंचवर्षीय योजना की भौतिक प्राथमिकता है ताकि हम गरीबों को सस्ते में स्वस्थ और सभ्य जीवन प्रदान कर सकें। अगर यह समस्या सुलझ जाती है तो हम अपना ध्यान आसानी से स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा तथा बेरोजगारी की तरफ ले जा सकेंगे और यह समाज में

समानता लाने की दिशा में एक कारगर कदम होगा।"

यूं तो ग्रामीण आवास की दिशा में 1957 में पहल हो गई थी जब पंडित नेहरू ने ग्राम आवास योजना की परिकल्पना की लेकिन इसका प्रचार और प्रसार नहीं हो पाया और यह नीति अधर में ही अटक कर रह गई। 1960 के पहले विकास अर्थशास्त्रियों ने आवास को विकास योजना के अन्दर हाशिये पर रखा क्योंकि उनके अनुसार यह विकास का गैर उत्पादक क्षेत्र है। ऐसे अर्थशास्त्रियों ने जो खर्च की योजना बनाई उसमें, उद्योग, यातायात, बिजली उत्पादन आदि को प्राथमिकता दी क्योंकि उनके अनुसार इन क्षेत्रों में लागत विकासोन्मुखी है। लेकिन 1960 के दशक में इस दर्शन में थोड़ा बदलाव आया तथा आवासीय क्षेत्र को भी प्राथमिक श्रेणी में शामिल किया गया।

1994 की राष्ट्रीय आवास नीति में आवास को एक विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया गया और आवासों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए शहरी तथा ग्रामीण आवासों के लिए अलग–अलग मानदण्ड निर्धारित किए। इसमें राज्य की भूमिका को एक सहायक के रूप में स्वीकारा गया जिसके माध्यम से समाज का कमजोर और गरीब वर्ग आवासीय सुविधाएं हासिल कर सके। साथ ही साथ इस नीति के अन्दर स्वयं के अक्षरणीय विकास की पृष्ठभूमि में और पर्यावरण की रक्षा करते हुए सब के लिए आवास की बात की गई। अतः राज्य की भूमिका को दाता के रूप में नहीं बल्कि सहायक के रूप में स्वीकार किया गया। इस तरह आवास को प्रोजेक्ट के आधार पर नहीं बल्कि क्षेत्र के आधार पर विकास का एक अभिन्न अंग माना गया। इसी नीति के तहत आवास संबंधी और अन्य सुविधाएं जैसे – पेयजल, स्वास्थ्य सुविधाएं, सड़क आदि मूल संरचना की भी बात की गई। इसकी एक विशेषता यह है कि ग्रामीण आवास को ग्रामीण स्तर पर चलाए जाने वाले कार्यक्रमों जैसे – समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना आदि के साथ जोड़ने की कोशिश की गई।

यूं तो सरकार की आवास नीति और तरह–तरह की योजनाएं कागज पर चलती रही हैं लेकिन वे सिर्फ महानगरों तथा कुछ छोटे–छोटे उपनगरों में ही सिमट कर रह गई थीं। इस दिशा में कुछ निगमों की भी राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर स्थापना हुई जैसे – हडको (हाउसिंग डेवल्पमेंट कारपोरेशन) राज्य आवास बोर्ड आदि। ग्रामीण आवास की दिशा में 1980 के बाद का दशक काफी सराहनीय रहा। यह वह दशक है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक अलग से ग्रामीण आवास नीति बनाई गई और इंदिरा आवास योजना, इनोवेटिव स्ट्रीम फार रूरल हाउसिंग एण्ड हैबिटाट डेवल्पमेंट, समग्र आवास योजना आदि प्रमुख हैं। इन कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की आवासीय समस्या को नीति के रूप में काफी गंभीरता से लिया गया और उसमें काफी हद तक हमें सफलता भी मिली है।

जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है कि आवास की समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में काफी गंभीर है और इसी समस्या के निदान के लिए

वास्तविकता तो यह है कि ग्रामीण आवासीय समस्या से जूझने के लिए, वैसे लोग जो स्वयं खर्च करने की क्षमता रखते हैं तथा अन्य सभी वर्गों के लोगों के बीच साझेदारी का वातावरण कायम करना आवश्यक है।

मई 1985 में जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत गरीबों के लिए आवास का कार्यक्रम से इंदिरा आवास योजना लागू की गई। लेकिन जनवरी 1986 से इस योजना को एक स्वतंत्र योजना के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य समाज के गरीब तबके के लोगों जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मुक्त किए गए बंधुआ मजदूर तथा समाज का वह वर्ग जो गरीबी रेखा के नीचे रहता है उन्हें कर्ज और अनुदान के रूप में नए आवास का निर्माण या पुराने मिट्टी के आवास जो जर्जर रूप में हैं उनके जीर्णोद्धार हेतु मदद करनी है।

1985–86 से इस योजना का फायदा सैन्य बल की विधवाओं या उनके आश्रितों, जिनके पति या पिता युद्ध में शहीद हो चुके हों तथा वैसे असैन्यबल के सदस्यों को भी मिलने लगा है जो अन्य अर्हताओं को भी पूरा करते हैं। पूरी योजना राशि का तीन प्रतिशत विकलांगों के लिए आरक्षित कर दिया गया है जो गरीबी रेखा के नीचे हैं।

इस योजना की मुख्य विशेषताएं हैं कि मकान पत्नी के नाम या पत्नी तथा पति दोनों के नाम पर दर्ज किया जाना चाहिए। पूरी राशि का 60 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के आवास निर्माण पर खर्च होना चाहिए तथा वैसे आवासों में स्वस्थ शौचालय तथा धुंआंरहित चूल्हे की भी व्यवस्था होनी चाहिए। लाभार्थियों का चयन ग्राम सभा द्वारा होना चाहिए। यहां तक कि निर्माण तकनीक, भौतिक सामग्री तथा मकान की रूपरेखा का चयन आदि सभी बातें लाभार्थियों के निर्णय पर छोड़ दी गई हैं। भवन निर्माण में किसी मध्यस्थ, ठेकेदार या विभागीय इकाई की कोई भूमिका नहीं होगी। 1999–2000 से इंदिरा आवास योजना की कुल राशि का 20 प्रतिशत कच्चे मकान वाले लाभार्थियों के मकान की मरम्मत के लिए सुरक्षित रखना होगा, जिसके तहत 10 हजार प्रति यूनिट अनुदान दिया जाएगा।

जहां तक इंदिरा आवास योजना की उपलब्धियों का प्रश्न है वह काफी प्रशंसनीय रही हैं। जब से यह योजना लागू हुई है तब से निर्धारित लक्ष्य से अधिक लोग लाभान्वित हुए हैं। 1985 से 1999 तक इस योजना के अन्तर्गत करीब 53 लाख मकानों का निर्माण हुआ है। वर्ष 2000–2001 के लिए केन्द्र सरकार द्वारा इस योजना के अन्तर्गत 1,700 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है तथा करीब 13 लाख मकानों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है, जिसके अन्दर नए पक्के मकान और पुराने कच्चे मकानों को पक्के में बदलने की व्यवस्था है। जहां तक खर्च का सवाल है तो यह केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार में 75:25 के भागीदारी के आधार पर राशि दी जाती है। केन्द्रशासित प्रदेशों में सारा खर्च केन्द्र सरकार वहन करती है।

इंदिरा आवास योजना का क्रियान्वयन डी. आर.डी.ए. के माध्यम से होता है लेकिन डी.

आर.डी.ए. स्वतंत्र रूप से नहीं बल्कि जिला परिषद् द्वारा इसको लागू करती है। स्थानीय क्षेत्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत ब्लाक प्रशासन को लक्ष्य हासिल करने की जिम्मेवारी दी गई है। गांव के स्तर पर लाभार्थियों का निर्धारण ग्राम सभा करती है।

यदि उपलब्ध मूल्यांकन अध्ययनों के आधार पर इंदिरा आवास योजना का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाए तो कहा जा सकता है कि देश के सभी भागों में यह योजना काफी सफल रही है। बिहार जैसे पिछड़े राज्य में जहां विकास के नाम पर बाहर से गए शोध कर्त्ताओं को निराशा ही हाथ लगती है, वहां इंदिरा आवास योजना देश के अन्य भागों से कहीं ज्यादा सफलतापूर्वक लागू हुई है।

ग्रामीण आवास संबंधी 1980 के दशक के बाद की एक योजना और भी है जिसे क्रेडिट कम सब्सिडी योजना फार रूरल हाउसिंग के नाम से जाना जाता है। इस योजना के लाभार्थी वे परिवार हैं जिनकी वार्षिक आय 32 हजार तक है। इसका मुख्य उद्देश्य है ऐसे परिवारों को आवास के मामले में मदद पहुंचाना जो कुछ राशि सरकार को वापिस करने की क्षमता रखते हैं। इस योजना के अन्तर्गत भी प्राथमिकता गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों को ही दी जाती है।

इस योजना के अन्तर्गत समतल क्षेत्रों में 10 हजार रुपया प्रति योग्य आवास इच्छित परिवार को तथा पर्वतीय तथा दूर–दराज के क्षेत्रों के लाभार्थियों को 11 हजार रुपये तक की सब्सिडी राशि दी जाती है। इसके अलावा 40 हजार तक कर्ज की भी व्यवस्था की गई है। इंदिरा आवास योजना की तरह ही स्वस्थ शौचालय तथा धुआंरहित चूल्हे की व्यवस्था अनिवार्य है। यह योजना एक अप्रैल 1999 को लागू की गई और अभी शुरुआती दौर में है। अतः इसकी सफलता–असफलता के विषय में अभी से मूल्यांकन करना ठीक नहीं होगा।

इसी तरह एक अप्रैल 1999 से ही एक और कार्यक्रम शुरू किया गया जिसे इनोवेटिव स्ट्रीम फार रूरल हाउसिंग एण्ड हैबिटाट डवलपमैन्ट के नाम से जाना गया। इसका मुख्य उद्देश्य ऐसे आवासों को ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोत्साहित करना है जो मूल्य प्रभावी हों, पर्यावरण के अनुकूल हों, वैज्ञानिक आधारों पर परखे गए हों तथा स्थानीय सामग्रियों से बने हों लेकिन उनका खाका बिल्कुल आधुनिक हो।

इस योजना की कल्पना प्रोजेक्ट के आधार पर की गई है। इसमें वे सभी सरकारी और गैर सरकारी संस्थाएं सहभागी होंगी जिन्हें पर्यावरण अनुकूल आवासीय तकनीक, खाका और स्थानीय भौतिक साधनों के प्रयोग का विशेष अनुभव हो तथा जिन्हें भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय और राज्य सरकारों की मान्यता प्राप्त हो।

ग्रामीण आवास के लिए सन् 1985 में केरल में निर्मिती आन्दोलन चालू किया गया जिसका उद्देश्य तकनीक हस्तांतरण, सूचना प्रसारण, कार्य कुशलता में वृद्धि तथा उत्पादन को मूल्य प्रभावी तथा भवन का वातावरण मित्रत्व होने को प्रशिक्षण के माध्यम से बढ़ाना था। इसके लाभार्थी ग्रामीण क्षेत्रों के वे निवासी हैं जो ऊपर लिखे उद्देश्यों को हासिल करने के इच्छुक हों।

इस समस्या से निपटने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि आवास की समस्या को गंभीरता के साथ लिया जाए। इसके लिए राज्य की ओर से अपेक्षित है, नए कानूनों को बनाना, जमीन की कीमत को एक खास सीमा तक ही सीमित रखना, भौतिक तथा आर्थिक साधनों को प्रचुर मात्रा में मुहैया करना, हाशिये पर खड़े गरीब परिवारों को प्राथमिकता देना तथा भूमि सीमा कानून का कठोरता से पालन करना।

इन केन्द्रों का गठन सरकार द्वारा ग्रामीण विकास की अन्य संस्थाओं द्वारा, जानी–मानी स्वयंसेवी संस्थाओं, व्यक्तिगत उद्यमियों, व्यावसायिक संगठनों, स्वायत्त संस्थाओं तथा सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों के माध्यम से हो सकता है। ऐसे देहाती भवन निर्माण केन्द्रों के गठन के लिए एक मुश्त 15 लाख रुपये का अनुदान दिया जा सकता है। केरल के इस प्रयोग को भी राष्ट्रीय स्तर पर एक अप्रैल 1999 को ही लागू किया गया तथा 15 लाख की अनुग्रह राशि भारत सरकार के ग्रामीण मंत्रालय द्वारा दी जाती है।

अभी हाल में ही एक और ग्रामीण आवास संबंधी योजना लागू की गई है जिसे समग्र आवास योजना का नाम दिया गया है। इसके अन्तर्गत मात्र आवास ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य और पेयजल जैसी प्राथमिक सुविधाओं को भी सुनिश्चित करना है। इस योजना का दर्शन है ग्रामीण आवास, स्वास्थ्य तथा जल, तीनों को एक में मिश्रित कर, तकनीक हस्तांतरण, मानव संसाधन विकास और आवासीय विकास को जन सहभागिता के आधार पर सुनिश्चित करना। दूसरे शब्दों में इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पूर्ण आवासी सुविधाएं उपलब्ध कराना है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इसका ध्येय सारी स्थानीय विकास गतिविधियों को एक मंच पर लाना है जो आज तक अलग–अलग रूप में और अलग–अलग ढंग से लागू की जाती थीं जैसे – भवनों का निर्माण, स्वास्थ्य सुविधाएं तथा पेयजल परियोजना आदि। इसका लक्ष्य अनुकूल और अक्षरणीय तकनीकों तथा खोजी विकल्पों को लागू करना है।

यूं तो यह योजना पूरे देश में लागू होनी है लेकिन प्रथम चरण में इसे 24 राज्यों और एक केन्द्रशासित प्रदेश के 25 जिलों के एक–एक ब्लाक में लागू किया गया है। ऐसे जिलों और ब्लाकों का चयन राज्य सरकार की सहमति से किया गया है। इस योजना के लाभार्थी गरीब ग्रामीण, खास करके गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोग हैं।

इसकी एक विशेषता यह है कि अभी देश में जितनी भी ग्रामीण आवास योजनाएं हैं जैसे – इंदिरा आवास योजना, क्रेडिट कम सब्सिडी स्कीम, इनोवेटिव स्ट्रीम फार रूरल हाउसिंग एण्ड हैबिटाट डवलपमेन्ट, ग्रामीण भवन निर्माण केन्द्र योजना हडको द्वारा चालित कर्ज आधारित ग्रामीण आवास योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास योजना जोकि राष्ट्रीय आवासीय बैंक द्वारा संचालित है तथा राज्यों द्वारा लागू की जाने वाली ग्रामीण आवासीय योजना, सब को एक छत के नीचे लाना है। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों तथा जिला प्रशासन द्वारा इस योजना के लिए अधिक धन आवंटित करना

है। इसके लिए राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के तहत जिलों का चयन हो चुका है तथा जन सहभागिता के आधार पर स्वास्थ्य सुविधाएं और जल आपूर्ति का कार्यक्रम चालू हो गया है। चयनित जिलों में राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन द्वारा सैनिटरी मार्टस स्थापित करने की व्यवस्था है जो कि पेयजल, स्वास्थ्य–सुविधाएं और आवासीय योजनाओं के क्रियान्वयन में तीव्रता लाएगी। ऐसे जिलों को भारत सरकार के ग्रामीण मंत्रालय द्वारा पांच लाख रुपये दिए जाएंगे तथा इसके अलावा जवाहर ग्राम समृद्धि योजना तथा सुनिश्चित रोजगार योजना के मद का उपयोग भी सड़कों और नालियों के विस्तार के लिए तेजी से किया जाएगा। इसके अन्दर जंगल विभाग तथा राज्य सरकारों द्वारा वन लगाओ और रसोई बगीचा के अन्तर्गत पर्यावरण संबंधी स्रोतों का भी उपयोग शामिल है। साथ ही बायोगैस और सौर ऊर्जा के प्रसारण हेतु भी अभी चल रही गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोत विभाग द्वारा दी जाने वाली राशि का प्रयोग भी शामिल है। लोगों के अन्दर दक्षता लाने के लिए प्रशिक्षण का भी प्रावधान है जिसका खर्च राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थाओं तथा हडको द्वारा वहन किया गया। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ब्लाक को केन्द्र सरकार द्वारा 20 लाख रुपये की सहायता दी जाती है। इन मदों का उपयोग जनसहभागिता के आधार पर होगा जिसमें कम से कम 10 प्रतिशत का योगदान जनता को देना होगा। हेबिटाट डवलपमेंट योजना के तहत किए जाने वाले कार्यों का निर्धारण ग्राम सभाओं द्वारा होना है।

इस योजना के विभिन्न अवयवों को लागू करने की जिम्मेवारी विभिन्न क्षेत्रीय विभागों जैसे डी.आर.डी.ए. हाउसिंग, पब्लिक हैल्थ, कृषि तथा वन विभागों की होगी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि यह योजना निश्चित रूप से फल–फूल सके, इसकी पूरी जिम्मेवारी जिलाधिकारी को दी गई है लेकिन क्रियान्वयन में जिला परिषद, ब्लाक समिति तथा ग्राम पंचायत की सहभागिता को भी सुनिश्चित किया गया है। विभिन्न योजनाओं पर अलग–अलग खर्च की जाने वाली राशि के अतिरिक्त 25 लाख की केन्द्रीय सहायता भी दी जानी है साथ ही राज्य सरकार तथा अन्य ऐजेंसियों का भी योगदान वांछनीय है। इसके अलावा जनता के द्वारा दी गई आर्थिक तथा शारीरिक मदद भी इसके अंतर्गत अपेक्षित है।

अंत में हम ग्रामीण आवास सम्बन्धी राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का लेखा–जोखा करने जब बैठते हैं तो हम निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पचास साल में अपनाई गई नीतियों में न तो कोई कमी थी न ही कार्यक्रमों में ही कोई खामी है। यदि कमी है तो उन नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करने वाले तंत्रों में। इन कार्यक्रमों को लागू करने वाला जो हमारा सरकारी तंत्र है वह जनता को एक भिखारी और अपने को दाता समझता है। जिनकी वजह से जनता की सहभागिता इन कार्यक्रमों में सुनिश्चित नहीं हो पाती है।

ग्रामीण आवास की दिशा में 1980 के बाद का दशक काफी सराहनीय रहा। यह वह दशक है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों के लिए एक अलग से ग्रामीण आवास नीति बनाई गई और इंदिरा आवास योजना, इनोवेटिव स्ट्रीम फार रूरल हाउसिंग एण्ड हैबिटाट डेवल्पमेंट, समग्र आवास योजना आदि प्रमुख हैं। इन कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की आवासीय समस्या को नीति के रूप में काफी गंभीरता से लिया गया और उसमें काफी हद तक हमें सफलता भी मिली है।

अगर कार्यक्रम के लाभार्थी को ही इस कार्य की योजना के क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन में शामिल नहीं किया जाए तो भला उसके अन्दर रुझान कैसे पैदा होगा? यहां तक कि अब नई पंचायती राज व्यवस्था के अन्दर लाभार्थियों के चयन की जिम्मेवारी ग्राम सभा को दी गई है। लेकिन आंकड़े बताते हैं कि आज भी ग्राम सभा की बैठकें सुचारू रूप से निर्धारित समय पर नही हो पाती हैं तथा लाभार्थियों का चयन वास्तविकता तथा पात्रता के आधार पर न होकर विभिन्न संकीर्ण आधारों पर होता है। ये सब इसलिए होता है कि हमारा आज का ग्रामीण जन मानस भी निरक्षरता तथा परम्परा के भंवर से निकल नहीं पाया है और उनके अन्दर दिशाहीनता और उदासीनता देखने को मिलती है। आवश्यकता इस बात की है कि कुछ सक्षम स्वयंसेवी संगठन, प्रबुद्ध युवा वर्ग तथा सरकारी तंत्र आम जनता को साझेदारी का महत्व बतलाएं तथा उनके अन्दर इच्छाशक्ति और आशा की नई किरण पैदा करें ताकि वे निर्भीक होकर अपना हक मांग सकें तभी ग्रामीण विकास का प्रयास सफल हो पाएगा। दूसरी आवश्यकता है कि पंचायती राज के निर्वाचित प्रतिनिधि अपनी भूमिका अच्छी तरह निभाएं इसके लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त हमारे राज्य तथा केन्द्र स्तर के राजनेताओं और नौकरशाहों को निष्पक्ष होकर नई इच्छाशक्ति के साथ जूझना होगा तभी यह यज्ञ सफल हो पाएगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो परिणाम वही होगा कि जैसे पचास वर्षों से हमारी ग्रामीण विकास योजनाएं कछुए की चाल से चल रही हैं वैसे ही चलती रहेंगी और समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी। अतः आवश्यकता है जनमानस को बदलने की तथा सरकारी कर्मियों को अपने को जनता का शोषक नहीं बल्कि रक्षक समझने की। अगर हम इसमें सफल हुए तो ग्रामीण पुनर्वास की समस्या ही नहीं बल्कि ग्रामीण विकास की सभी योजनाएं सफलता की ऊंचाइयों पर पहुंचेगी अन्यथा करोड़ों का खर्च आज जिस तरह लाभार्थियों तक नहीं पहुंच पाता और बरबाद होता है वह क्रम आगे भी चलता रहेगा। ❑

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग
ईस्ट ब्लाक–4 लेवल–7
आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

सड़कें ग्रामीण विकास की बुनियादी जरूरत

डा. कैलाश चन्द्र पपनै

सड़क प्रगति व विकास की मंजिल तक पहुंचने का जरूरी रास्ता है। देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया के पांच दशकों के बाद भी देश के लगभग 53 प्रतिशत गांवों में पक्की बारहमासी सड़कें नहीं हैं। निश्चय ही यह स्थिति अच्छी नहीं है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगा कि गांवों के आर्थिक पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण यह है कि वहां अच्छी बारहमासी सड़कों का अभाव है। एक अध्ययन में कहा गया है कि सड़क सुविधा के अभाव में देश में प्रतिदिन 300 गर्भवती महिलाओं की मृत्यु हो जाती है क्योंकि उन्हें उचित अस्पताल सुविधा नहीं मिल पाती।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार देश में वर्ष 1994–95 तक पक्की सड़कों की लम्बाई 12,16,269 किलोमीटर थी जबकि कच्ची सड़कों की लम्बाई 9,63,894 किलोमीटर थी। वर्ष 1997 में पक्की सड़कों की लम्बाई 13,94,061 किलोमीटर थी जबकि कच्ची सड़कों की लम्बाई 10,71,816 किलोमीटर थी।

केन्द्र की वर्तमान सरकार निश्चय ही इस बात के लिए साधुवाद की पात्र है कि उसने बुनियादी ढांचे में सुधार के अपने कार्यक्रम में सड़कों के निर्माण और सुधार कार्यक्रम को प्राथमिकता दी है। प्रधान मंत्री ने न केवल राजमार्गों में सुधार की महत्वाकांक्षी स्वर्णिम चतुष्कोण योजना बनाई वरन देश के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए भी 2,500 करोड़ रुपये की सड़क परियोजना की घोषणा की है। प्रधान मंत्री ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर ऐतिहासिक लालकिले की प्राचीर से राष्ट्र को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना नामक इस परियोजना की रूपरेखा के बारे में संकेत दिया। शत प्रतिशत केन्द्रीय अनुदान से चलने वाली इस परियोजना के अन्तर्गत अगले तीन वर्षों में 1,000 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ा जाएगा। इसके अलावा यह लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है कि अगले सात सालों में 500 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों को ये सुविधाएं मुहैया करवा दी जाएंगी। वर्ष 1991 के जनसंख्या संबंधी आंकड़ों के अनुसार देश में 1,000 से कम आबादी वाले गांवों की संख्या 3,39,093 थी। इसी प्रकार से 1,000 से 1,999 के बीच की जनसंख्या वाले गांवों की संख्या 1,14,395 थी। इससे आगे 2,000 से लेकर 4,999 तक की जनसंख्या वाले गांवों की संख्या 62,915 थी। देश में 5,000 से 9,999 तक के बीच की जनसंख्या वाले गांवों की संख्या 10,597 थी जबकि 10,000 से अधिक आबादी वाले गांवों की संख्या मात्र 2,779 थी। इससे स्पष्ट है कि देश में 58 प्रतिशत से अधिक गांव 1,000 से कम आबादी वाले हैं।

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने इस वर्ष जनवरी में श्री नितिन गडकरी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय ग्रामीण सड़क विकास समिति का गठन किया। समिति को जो कामकाज सौंपा गया वह इस प्रकार से था :

- भारत के सड़क सम्पर्क रहित गांवों का पता लगाना।
- गांवों के बीच सम्पूर्ण सड़क सम्पर्क के बारे में कुल सड़क लम्बाई का निर्धारण।
- जमीन व मिट्टी की हालत को देखते हुए सड़क के बारे में मानदंडों का निर्धारण।
- परियोजना के लिए अपेक्षित धनराशि का निर्धारण करना व राज्यों व केन्द्र सरकार के योगदान के बारे में निर्णय करना।
- विदेशी स्रोतों व अन्य स्रोतों से संसाधन प्राप्त करने की संभावनाओं का पता लगाना।
- बांड जारी कर धन जुटाने की संभावना का पता लगाना।
- योजना पर अमल करने वाली एजेंसी या एजेंसियों के बारे में राय देना।

* विशेष संवाददाता, हिन्दुस्तान (हिन्दी दैनिक), नई दिल्ली

- निगम का ढांचा तय करना।
- परियोजना पर समयबद्ध ढंग से अमल सुनिश्चित करने, इसके तौर तरीकों व ठेका देने के तरीके का निर्धारण।

इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सभी गांवों को बारहमासी सड़कों द्वारा जोड़ने के लिए 80,000 करोड़ रुपये की जरूरत होगी। रिपोर्ट में कहा गया कि देश के ग्रामीण इलाकों में 10.98 लाख किलोमीटर लम्बी सड़कें हैं और 12.60 लाख किलोमीटर और सड़क मार्ग की जरूरत है। अन्य बातों के अलावा जो प्रमुख सिफारिशें की हैं, वे इस प्रकार हैं :–

- गांवों में सड़क निर्माण का समयबद्ध कार्यक्रम चलाया जाए। सरकार को देश के हर गांव को प्राथमिकता के आधार पर बारहमासी अच्छी सड़क की सुविधा प्रदान करनी चाहिए ताकि वे शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव जैसी वंचनाओं से मुक्त हो सकें।
- ये सड़कें पक्की डामर वाली सड़कें होनी चाहिए। सड़क की कुल चौड़ाई 7.5 मीटर होनी चाहिए जिसमें से पक्की सड़क का हिस्सा 3.75 मीटर का होना चाहिए। सड़कों के साथ–साथ पानी की निकासी का प्रबंध व पुलिया आदि का निर्माण भी करवाया जाना चाहिए।
- केन्द्र सरकार को एक राष्ट्रीय ग्रामीण सड़क विकास एजेंसी की स्थापना करनी चाहिए। ग्रामीण सड़क निर्माण के महत्व व कार्य की गुरुता को देखते हुए इसका अध्यक्ष केन्द्र सरकार के केबिनेट मंत्री के स्तर का व्यक्ति होना चाहिए।
- एजेंसी को उपयुक्त स्रोतों से धन उधार ले कर इस कार्यक्रम के लिए धन जुटाना चाहिए।
- पेट्रोल व डीजल पर लगाए जा रहे शुल्क में से ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क निर्माण के लिए निर्धारित राशि प्रति वर्ष इस कार्यक्रम के लिए सुलभ करवानी चाहिए। ग्रामीण विकास मंत्रालय को भी अपने बजट से प्रतिवर्ष इतनी ही राशि अर्थात् 2,500 करोड़ रुपये इस एजेंसी को मुहैया करवाने चाहिए। ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि यह राशि उसी वित्तीय वर्ष में खर्च न हो पाने की हालत में कालातीत होने दी जाए।
- केन्द्र सरकार को पहले पांच वर्षों में कम से कम 4 प्रतिशत दर से करमुक्त बांड जारी करके 5,000 करोड़ रुपये जुटाने चाहिए। इन बांडों पर ब्याज के भुगतान व इनकी अदायगी के बारे में केन्द्र सरकार को गारंटी लेनी चाहिए। जहां तक मूल–धन का प्रश्न है इसका प्रबंध उक्त एजेंसी द्वारा अपने कोष से किया जाना चाहिए।
- सड़क निर्माण के काम में पूर्ण गुणवत्ता व उचित स्तर बनाए रखने व ऋणदाताओं के प्रति एजेंसी की पूर्ण जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए एजेंसी को राज्य सरकारों व जिला परिषदों के पूर्ण सहयोग से इन कार्यक्रमों पर स्वयं ही अमल करना चाहिए।
- सड़क निर्माण के लिए भूमि अधिग्रहण का काम राज्य सरकारों द्वारा किया जाना चाहिए।
- दुर्गम एवं विशेष क्षेत्रों में सड़क निर्माण का काम सीमा सड़क संगठन को सौंपा जाना चाहिए।
- एजेंसी को कामकाज के प्रबंधन व निगरानी के लिए कम्प्यूटर और इंटरनेट आधारित आनलाइन व्यवस्था लागू करनी चाहिए।
- समन्वय के काम के लिए प्रत्येक राज्य में राज्य के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक समिति का गठन करना चाहिए।
- प्रत्येक जिले में एजेंसी के सड़क निर्माण के काम की गुणवत्ता जांच और निगरानी के लिए एक पृथक संगठन होना चाहिए।
- काम पूरा होने के बाद सड़क को देखरेख के लिए राज्य सरकार या जिला परिषद के सुपुर्द कर दिया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि रख–रखाव के लिए उचित प्रावधान किए गए हों।
- सरकार को लोहे के इस्तेमाल वाले बैलगाड़ी टायरों के स्थान पर न्यूमेटिक टायरों के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करना चाहिए। सब्सिडी देने और कर में राहत देने के कदम उठा कर ऐसा किया जा सकता है।

ये तमाम सिफारिशें सरकार के विचाराधीन हैं। यही उम्मीद की जा सकती है कि इनमें से कुछ पर धीरे–धीरे अमल किया जाएगा ताकि ग्रामीण सड़कों के निर्माण के काम को पुख्ता संस्थागत आधार दिया जा सके। इसे ग्रामीण सड़क योजना का दुर्भाग्य कहा जाए या कि प्रशासन के स्तर पर सामान्यतः चलने वाली खींचतान कि योजना पर अमल के प्रश्न पर कुछ विवाद रहा है। परन्तु यह तो निश्चित है कि ये विवाद समय रहते सुलझा लिये जाएंगे और योजना अपने लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में आगे बढ़ेगी। वैसे इस बारे में कोई दो राय नहीं होनी चाहिए कि पेट्रोल – डीजल उपकर के आधार पर ग्रामीण सड़क परियोजना के लिए निर्धारित 2,500 करोड़ रुपये की राशि जरूरतों को देखते हुए नाकाफी है। फिर भी यह बात स्वीकार करनी होगी कि पहली बार ग्रामीण क्षेत्र में सड़क निर्माण के काम को इतनी उच्च प्राथमिकता दी गई है। यदि ग्रामीण सड़कों के निर्माण कार्य के लिए प्रतिवर्ष 2,500 करोड़ रुपये की ही राशि रखी जाए तो देश के सभी गांवों को सड़क सम्पर्क प्रदान करने में 30 वर्षों का समय लग जाएगा। फिलहाल सरकार ने सात वर्षों की अवधि में सभी गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ देने का लक्ष्य रखा है। सभी गांवों को पक्की सड़कों से जोड़ देने से देश के लगभग 30 करोड़ लोग लाभान्वित होंगे।

इस महत्वाकांक्षी ग्रामीण सड़क परियोजना पर अमल करते समय सबसे अधिक ध्यान इस बात का रखा जाना होगा कि सड़क सुविधा के क्षेत्र में क्षेत्रीय असंतुलन दूर हो सके। पहले से ही सड़क क्षेत्र में विभिन्न राज्यों के बीच बहुत असंतुलन है। केरल जैसे राज्य में प्रति 100 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सड़क की लम्बाई 374.9 किलोमीटर है तो जम्मू–कश्मीर के लिए यह अनुपात 9.7, अरुणाचल प्रदेश के लिए 16.8, राजस्थान के लिए 37.9, मध्य–प्रदेश के लिए 45.1, बिहार के लिए 50.8 तथा उत्तर प्रदेश के लिए 86.8 किलोमीटर प्रति 100 वर्ग किलोमीटर का है। यदि उपलब्ध सड़क लम्बाई के मामले में विषमता को जनसंख्या के अनुपात में देखा जाए तो पता चलता है कि एक तरफ तो देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र में अरुणाचल प्रदेश है जहां प्रति लाख आबादी के लिए 1,281 किलोमीटर लम्बी सड़क उपलब्ध है। दूसरी तरफ बिहार में प्रति लाख आबादी के लिए 92.8 किलोमीटर लम्बी सड़क उपलब्ध है।

निश्चय ही ऐसी विषमता के बीच सड़क निर्माण की परियोजना के ब्यौरे तैयार करते समय संसाधनों के न्यायसंगत वितरण पर विशेष रूप से ध्यान देना होगा। ❑

ग्राम–विकास, ग्राम–स्वराज और जीवंत ग्राम

मस्तराम कपूर

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद गांवों के विकास के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किया गया। लेकिन दो तीन वर्ष में इस कार्यक्रम की सीमाओं को देखकर गांधीजी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को साकार करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था के बारे में सोचा गया। इसके लिए कई समितियां बनीं और 1992 में 73वें संविधान संशोधन के पारित होने के बाद पंचायती राज स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। लेखक का कहना है कि पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार तो मिल गए हैं लेकिन ये संस्थाएं तभी अपना काम सफलतापूर्वक कर पाएंगी जब लोग जीवंत हों और उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता हो।

स्वाधीन भारत के पिछले 50 वर्षों में भारत के गावों ने क्या खोया और क्या पाया, इसका अनुमान हम उन संकल्पनाओं के माध्यम से ही लगा सकते हैं जो गावों की स्थिति को सुधारने के लिए गढ़ी गईं। इन संकल्पनाओं को ग्राम–विकास, ग्राम–स्वराज और जीवंत ग्राम का नाम दिया जा सकता है। ये तीनों सकंल्पनाएं क्रमशः जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी और डा. राममनोहर लोहिया द्वारा प्रस्तुत की गई थीं। ग्राम–विकास में पश्चिमी शैली के विकास का भाव निहित था जिसमें केंद्रीकृत व्यवस्था के अंतर्गत नौकरशाही के माध्यम से विकास किया जाता है। नेहरू जी पश्चिम के वैज्ञानिक विकास से बहुत प्रभावित थे और उन्हें ब्यूरोक्रेसी (नौकरशाही) पर भी बड़ा भरोसा था। इसलिए जब स्वाधीन भारत के गांवों का सवाल आया तो उन्होंने पश्चिमी ढंग के आधुनिक विकास को ही तरजीह दी। सोवियत संघ और कुछ पश्चिमी देशों के माडल पर उन्होंने खंड विकास योजना और क्षेत्रीय विस्तार योजनाएं शुरू कीं। इनके अंतर्गत एक अलग नौकरशाही ढांचे का निर्माण किया गया जो ब्रिटिश राज से चले आ रहे नौकरशाही ढ़ांचे से अलग था। ब्रिटिश नौकरशाही तंत्र आयुक्त, उपायुक्त, तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी और लंबरदार से बनता था। नए नौकरशाही तंत्र में जिला विकास अधिकारी, खंड विकास अधिकारी और ग्राम विकास अधिकारी (ग्रामसेवक) आते थे। नए तंत्र का काम सिर्फ विकास के कार्यों को देखना था जबकि पुराने तंत्र के पास लगान वसूली, आदि मामले और कानून–व्यवस्था का काम था।

गांधी जी की ग्राम विकास के संबंध में अलग कल्पना थी। इस कल्पना को उन्होंने सर्वप्रथम सन् 1909 में छपी अपनी पुस्तक "हिंद स्वराज" में स्पष्ट किया था। वे भारत की प्राचीन ग्राम–व्यवस्था को बनाए रखना चाहते थे जिसमें पंचायतों का महत्वपूर्ण योगदान होता था और गांव अपनी जरूरतों के मामलों में आत्मनिर्भर होते थे। कुछ विद्वान इन गांवों को लघु गणतंत्र (मिनी रिपब्लिक) कहते हैं। गांधी जी ने जिस ग्राम–स्वराज की कल्पना की उसमें गांवों को आत्मनिर्भर बनाने पर विशेष जोर दिया गया। निम्नलिखित उद्धरण उनकी ग्राम–स्वराज की कल्पना को स्पष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण है :

"आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हर एक गांव में जम्हूरी सल्तनत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब है कि हर गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा – अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। ...जिस समाज का हर एक आदमी और औरत यह जानती है कि उसे क्या चाहिए और उससे भी बढ़कर जिसमें यह माना जाता है कि बराबर की मेहनत करके भी दूसरों को जो चीज नहीं मिलती है वह खुद भी किसी को नहीं लेनी चाहिए वह समाज जरूर ही बहुत ऊंचे दर्जे की सभ्यता वाला होना चाहिए। ...ऐसा समाज अनगिनत गांवों का बना होगा। उसका फैलाव एक के उपर एक ढंग पर नहीं बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शक्ल में होगा। जिदंगी मीनार की शक्ल में नही होगी जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है।"

इस उद्धरण में निहित गांधी जी के ग्राम–स्वराज की कल्पना को साकार करने के लिए जिस ढांचे की आवष्यकता थी उसके स्थान पर नेहरू जी ने पष्चिमी ढंग के विकास के ढांचे को अपनाया। लेकिन दो–तीन वर्षों में ही यह स्पष्ट हो गया कि यह ढांचा पर्याप्त नही है। अतः 1957 में बलवंतराय मेहता समिति को पंचायत–प्रणाली की संभावनाओं के संबंध में सुझाव देने को कहा गया। इस समिति ने सुझाव दिया कि विकास के कामों में ग्रामीण जनता की भागीदारी सुनिष्चित करने के लिए

तीन स्तरीय पंचायत प्रणाली स्थापित की जाए। इस प्रकार पंचायत प्रणाली लागू तो हुई लेकिन ढीले–ढाले तरीके से। सारा काम नौकरशाही के हाथों में ही रहा। 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक और समिति बनी उसने जिला और ब्लाक की दो स्तरीय प्रणाली का सुझाव दिया। इस प्रणाली में पंचायतों को राजनैतिक संस्थाओं के रूप में काम करने की सिफारिश की गई। इसके बाद 1985 में जी.के. राव समिति और 1986 में एम.एल. सिंघवी समिति बनी। सिंघवी समिति ने पंचायतों को संवैधानिक दर्जा देने का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव भी कुछ वर्ष यूं ही पड़ा रहा। फिर दिसंबर, 1992 में 73वां संविधान संशोधन अधिनियम पास हुआ जिसमें पंचायतों को संविधान की नौंवीं अनुसूची में डाला गया और उनके लिए चुनाव आदि कराने तथा उनके लिए वित्त–पोषण की निश्चित व्यवस्था की गई। इससे पूर्व पंचायतों को राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में शामिल किया गया था और इसलिए राज्य इसे लागू करने के लिए बाध्य नहीं थे।

अब तक गांवों का जो भी विकास हुआ है वह पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा स्थापित नौकरशाही तंत्र और पंचायत प्रणाली तंत्र के माध्यम से हुआ। ब्रिटिश राज से चले आ रहे नौकरशाही तंत्र को इन पर निगरानी रखने का दायित्व सौंपा गया है हालांकि कुछ काम (जैसे सड़क–निर्माण और रख–रखाव, बिजली व्यवस्था, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा आदि जो पहले से उसके पास थे, उसके अधीन ही रखे गए हैं। इस प्रकार गांवों के विकास की तीन श्रेणियां इस समय काम कर रहीं हैं। इसके अलावा विधायकों तथा सांसदों को अपने–अपने निर्वाचन क्षेत्र के विकास के लिए एक नियत धन–राशि दी जाती है। वह भी ग्रामीण विकास के काम आती है। 73वें संविधान संशोधन से पंचायत प्रणाली को संवैधानिक दर्जा मिल जाने के बाद और सभी राज्यों द्वारा इस संविधान संशोधन के अनुसार अपने–अपने पंचायत कानूनों में संशोधन कर लेने के बाद ग्रामीण विकास के लगभग सभी काम जनता द्वारा चुनी गई पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला परिषदों के माध्यम से होने की उम्मीद की जा रही है। संविधान संशोधन अधिनियम में पंचायतों के लिए जो काम निर्धारित किए गए हैं वे ग्यारहवीं अनुसूची में दिए गए हैं। इस सूची को देखने से पता चलता है कि गांवों के समग्र विकास का दायित्व पंचायत प्रणाली पर आता है। ये काम हैं : कृषि और कृषि–विस्तार, भूमि–विकास, भूमि सुधार का कार्यन्वयन, चकबंदी और भूमि–संरक्षण, लघु–सिंचाई, जल प्रबंध और जल छाजन विकास, पशु–पालन, दुग्ध आयोग और कुक्कुटपालन, सामाजिक वानिकी और फार्म वानिकी, लघु वन–उत्पाद, लघु उद्योग जिनके अंतर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी शामिल हैं, खादी ग्राम और कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पेय जल, ईंधन और चारा, सड़कें, पुलिया, पुल, घेरी, जल–मार्ग तथा यातायात के अन्य साधन, ग्रामीण विद्युतीकरण जिसके अंतर्गत विद्युत का वितरण भी है, गैर–पारंपरिक ऊर्जा स्रोत, गरीबी उपशमन कार्यक्रम, शिक्षा जिसके अंतर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा, प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा, पुस्तकालय, सांस्कृतिक क्रिया–कलाप, बाजार और मेले, स्वास्थ्य और स्वच्छता, जिसके अंतर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और औषधालय भी हैं, परिवार कल्याण, महिला और बाल–विकास, समाज कल्याण जिसके अंतर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है, कमजोर वर्गों का, विशेष कर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सामुदायिक परिसम्पत्तियों का अनुरक्षण आदि।

पिछले पचास वर्षों में ग्राम–विकास के जो काम हुए हैं उन पर हम संतोष व्यक्त कर सकते हैं। यह सही है कि हम अब भी सब गांवों में पीने का पानी, प्राथमिक शिक्षा और मूल चिकित्सा–सुविधा जैसी मूलभूत जरूरतों की पूर्ति नहीं कर सके हैं। तथापि कुल मिला कर गांवों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। अधिकांश गांवों को पेयजल, प्राथमिक शिक्षा और चिकित्सा की मूल सुविधाएं उपलब्ध कराई जा चुकी हैं। सड़कों के निर्माण के साथ यातायात की सुविधा भी अधिकांश गांवों को प्राप्त है।

इस सूची से प्रकट है कि वन विभाग के अंतर्गत आने वाला वनों के विकास और संरक्षण को छोड़कर सभी विकास–कार्य पंचायतों के माध्यम से होंगे। लेकिन इस स्थिति तक आने में अभी समय लगेगा। हमारे यहां विकेंद्रीकरण की संस्कृति अभी बनी नहीं है। राज्य की हर संस्था और विभाग की प्रवृत्ति अधिक से अधिक अधिकार अपने पास रखने की। केंद्र राज्यों को अधिकार नहीं देना चाहता और राज्य स्थानीय संस्थाओं को अधिकार नहीं सोंपने चाहते। इस प्रवृत्ति के चलते पंचायतें कब, इतनी सशक्त बनेंगी कि वे सारे विकास–कार्य अपने जनप्रतिनिधियों के माध्यम से और जनता के सहयोग से कर सकेंगी, इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।

पिछले पचास वर्षों में ग्राम–विकास के जो काम हुए हैं उन पर हम संतोष व्यक्त कर सकते हैं। यह सही है कि हम अब भी सब गांवों में पीने का पानी, प्राथमिक शिक्षा और मूल चिकित्सा–सुविधा जैसी मूलभूत जरूरतों की पूर्ति नहीं कर सके हैं। तथापि कुल मिला कर गांवों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। अधिकांश गांवों को पेयजल, प्राथमिक शिक्षा और चिकित्सा की मूल सुविधाएं उपलब्ध कराई जा चुकी हैं। सड़कों के निर्माण के साथ यातायात की सुविधा भी अधिकांश गांवों को प्राप्त है। पहाड़ी इलाकों में दूर–दूर बसे गांवों और दुर्गम स्थानों तक बस की सुविधा मुहैया कराई गई है। अब शायद ही कुछ ऐसी जगहें बची हों जहां रिश्तेदारी में जाने के लिए, कोर्ट–कचहरी या अस्पताल जाने के लिए दिनभर की पैदल यात्रा करनी पड़े। बिजली अधिकांश गांवों में पहुंच चुकी है। डाकघर की सुविधा भी अधिकांश गांवों को प्राप्त है। एक जगह से दूसरी जगह संदेश भेजने की संचार व्यवस्था में तो एक प्रकार की क्रांति ही आ गई है। टेलिफोन की सुविधा गांवों में उपलब्ध हो रही है। अब तो गांवों को इंटरनेट से जोड़ने का कार्यक्रम भी तेजी से चलने वाला है। मनोरंजन की सुविधा रेडियो–दूरदर्शन आदि भी अधिकाधिक गांवों को मिल रही है। किसानों और दूसरे जरूरतमंदों की ऋण और बैंकिंग की सुविधा भी सहकारी संस्थाओं के माध्यम से अथवा वाणिज्यिक बैंकों के माध्यम से पहुंचाई जा रही है। किसानों को

खाद, बीज आदि के लिए दूर नहीं जाना पड़ता। उनके उत्पादों की बिक्री की समुचित व्यवस्था भी की गई है अथवा की जा रही है।

ग्राम–विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है भूमिहीनों, खेत मजदूरों और अन्य असहाय तथा निर्धन वर्गों के लिए गरीबी–उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रम जैसे जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, असहाय वृद्ध पेंशन योजना आदि। इन योजनाओं के कारण गांवों के निर्धन वर्गों को राहत पहुंच रही है। कई प्रदेशों में इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन–जातियों के लिए साफ–सुथरे मकानों की बस्तियां बनी हैं। छोटे–छोटे उद्योग–धंधों के लिए सरकारी सहायता मिलने से इन वर्गों के रहन–सहन की स्थिति में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। शिक्षा के द्वार सब बच्चों के लिए खुले हैं और इस मामले में भेदभाव अब अपवाद ही है।

कुल मिलाकर पिछले 50 सालों में ग्राम–विकास की विभिन्न योजनाओं के कारण गांवों की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है। यह उतना तो नहीं है जितने की उम्मीद हमारे नेताओं ने और अर्थशास्त्रियों ने लगाई थी तथापि आज की स्थितियों और आज से 50 साल पहले की परिस्थितियों में जमीन–आसमान का अंतर है। यह अंतर साहित्य में भी प्रतिबिंबित हो रहा है। हिंदी के महान उपन्यासकार और कहानीकार मुंशी प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की स्थितियों का जो चित्रण अपने उपन्यासों और अपनी कहानियों में किया वह अपने समय का यथार्थ चित्रण था। आज यह यथार्थ हमें परीकथाओं और ऐतिहासिक कथाओं के चित्रण की तरह काफी अलग और अजनबी लगता है। पचास के दशक में लिखी गई बच्चों की यथार्थ कहानियों को आज के बच्चों के लिए प्रस्तुत करते समय उनमें बहुत कुछ बदलना पड़ेगा अन्यथा बच्चों को उन कहानियों में कही गई बातें अविश्वसनीय लगने लगेंगी। साहित्य के यथार्थ का ऐतिहासिक यथार्थ में बदलना स्थितियों के परिवर्तन का सूचक होता है।

लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया कि यह परिवर्तन और यह विकास हमारी आशाओं के अनुरूप नहीं है। जितना पूंजी–निवेश इसमें किया गया उसके अनुरूप हमें परिणाम नहीं मिले। पचास साल की अवधि कोई छोटी अवधि नहीं होती है। आधी सदी में सभ्यताएं बदल जाती हैं, युग बदल जाते हैं। हमारी प्रगति की रफ्तार बहुत धीमी रही है। इसके लिए साधनों की कमी का बहाना काफी नहीं है और न जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का। निश्चय ही जनसंख्या की तीव्र वृद्धि हमारी योजनाओं में बाधक रही है लेकिन जनसंख्या पर नियंत्रण रखना भी तो विकास का ही एक पहलू है। यदि विकास सही दिशा में और सही रफ्तार से होता तो लोगों में जागृत्ति आती और वे स्वयं जनसंख्या के नियंत्रण के लिए विशेष प्रयत्न करते। जनसंख्या की समस्या चीन में और दक्षिण पूर्व एशिया के कई देशों में भी रही है लेकिन इन देशों को हमारी अपेक्षा कहीं अधिक सफलता मिली है। हमारी

ग्रामीण विकास के लिए हमने जो ढांचा तैयार किया उसमें नौकरशाही तंत्र का इतना दबदबा है कि तथाकथित स्वायत्त पंचायत प्रणाली नौकरशाही आदेशों का अनुपालन करने वाली प्रणाली बन गई है। पंचायत, ब्लाक समिति और जिला परिषदों के कार्यकारी अधिकारी जनप्रतिनिधियों के आगे जवाबदेह नहीं हैं।

प्रगति की रफ्तार कम होने का बड़ा कारण भ्रष्टाचार रहा है। इस संदर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की स्वीकारोक्ति बिल्कुल सही है कि सरकार द्वारा दिए गए प्रत्येक रुपये में से सिर्फ 15 पैसे ही जनता तक पहुंचते हैं। शेष 85 पैसों का ऊपर–ऊपर गायब हो जाना ही धीमे विकास का मुख्य कारण है। व्यवस्था के इस भ्रष्टाचार के लिए नौकरशाही तंत्र को ही अधिकतर जिम्मेवार ठहराया जाता है। कुछ हद तक यह सही भी है। ग्रामीण विकास के लिए हमने जो ढांचा तैयार किया उसमें नौकरशाही तंत्र का इतना दबदबा है कि तथाकथित स्वायत्त पंचायत प्रणाली नौकरशाही आदेशों का अनुपालन करने वाली प्रणाली बन गई है। पंचायत, ब्लाक समिति और जिला परिषदों के कार्यकारी अधिकारी जनप्रतिनिधियों के आगे जवाबदेह नहीं हैं, वे अपने विभागाध्यक्षों के माध्यम से राज्य सरकार के आगे जवाबदेह होते हैं। इसके अलावा जिस चुनाव–प्रणाली से पंचायतों के जनप्रतिनिधि चुनकर आते हैं वह पैसे पर निर्भर हैं। चुनाव लड़ने के लिए उम्मीदवारों को बहुत अधिक पैसा खर्च करना पड़ता है और साथ ही अगले चुनावों के लिए धन–संग्रह करना पड़ता है। नौकरशाहों और ठेकेदारों से मिल कर वे भी सरकारी धन की लूट में शामिल हो जाते हैं। नेता, नौकरशाह और ठेकेदारों की तिकड़ी का खेल अब किसी से छिपा नहीं रह गया है। इसे जनता भी जानती है और सरकार भी लेकिन इसका कोई इलाज किसी के पास नहीं है। इसका इलाज था गांधी जी के पास या लोहिया जी के पास जिनके ग्राम–स्वराज और चौखंभा राज के जींवत गांव में इस भष्टाचार पर नियंत्रण रखने की व्यवस्था थी।

ग्राम–स्वराज की पंचायत में गांधी जी के अनुसार पूरी ताकत और सत्ता होगी। दूसरे शब्दों में उसका नौकरशाही पर पूरा नियंत्रण होगा। पंचायत ही योजनाएं बनाएगी और उन्हें कार्यान्वित करेगी। ग्राम–स्वराज का आत्मनिर्भर गांव अपने में एक पूर्ण इकाई होगी जिसे किसी बाहरी ताकत पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। गांधी जी गांवों का विकास इस प्रकार करना चाहते थे कि उसमें मानवीय, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। यह मानना गलत होगा कि गांधी जी गांवों को वैज्ञानिक उपलब्धियों से वचिंत रखना चाहते थे। उनकी यह इच्छा नहीं हो सकती कि गांवों के लोग झोंपड़ियों में रहें और गरमी, सरदी, बाढ़, तूफान में असहाय मरते रहें। या वहां आने–जाने के साधन, अच्छे स्कूल, अच्छे उपचार केन्द्र, डाक्टर, नर्सें न हों। गांधी जी जिन वैज्ञानिक साधनों और उपलब्धियों का खुद प्रयोग करते थे उनसे गांवों के लोगों को वचिंत रखने की बात सोच भी नहीं सकते थे। अतः वे चाहते कि गांवों में डाक, टेलीफोन की अच्छी सुविधा हो, रेडियो–दूरदर्शन की सुविधा हो, अच्छी संचार सेवाएं हों। कोई हाथ खाली न रहे। तरह–तरह के रोजगार हों ताकि लोग अपने घर–बार, खेत–खलिहान छोड़कर शहरों की गंदी बस्तियों में रहने को मजबूर न हों। उनकी एक ही शर्त होती गांवों को इन सुविधाओं के लिए बाहर की किसी संस्था या प्राधिकरण की आवश्यकता न हो। जिस प्रौद्योगिकी के माध्यम से ये सब सुविधाएं उपलब्ध हों उस प्रौद्योगिकी पर गांव वालों का नियंत्रण हो।

प्रौद्योगिकी आदमी को गुलाम न बनाए, आदमी प्रौद्योगिकी को अपने नियंत्रण में रखे। संक्षेप में वे सभी सुविधाएं जो मानव–जीवन को सुखी, समृद्ध और सृजनशील बनाती हैं, गांवों में उपलब्ध हों, आदमी को गुलाम बनाए बगैर।

ग्राम–विकास की यह कल्पना उस विकास से उल्टी है जिसकी तरफ आज सारा विश्व अंधा होकर बढ़ रहा है। इस विकास की चरम सीमा है विश्व को ग्राम बनाना अर्थात ग्लोबल विलेज का निर्माण। गांधी जी इसके विपरीत ग्राम को विश्व बनाना चाहते थे अर्थात् उसमें वे तमाम सुविधाएं लाना चाहते थे जो सारे विश्व को उपलब्ध हों। कुछ लोग वैभव के स्वर्ग में रहें और अधिकांश लोग घोर गरीबी में जिएं यह उन्हें स्वीकार नहीं था। उनका ग्राम स्वराज स्वतंत्रता की उनकी विशिष्ट कल्पना पर आधारित था। यह कल्पना थी कि पूर्ण समग्र का अंश भी अपने में पूर्ण हो। गांव राज्य की इकाई है। इस इकाई को अपने में पूर्ण अर्थात् स्वायत्त होना चाहिए। भारतीय चिंतन में इसे अंड में ब्रह्मांड कहा गया है। इसकी अभिव्यक्ति उस वेद–ऋचा में है जिसमें कहा गया कि यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण अलग होकर शेष पूर्ण बचता है। ग्राम–स्वराज की यह कल्पना पश्चिमी सभ्यता के विकल्प के रूप में एक नई मानव सभ्यता की बुनियाद रखती है। पश्चिमी विकास डार्विन के विकासवाद पर आधारित है जिसके मूल सिद्धान्त हैं कि शक्तिशाली को ही जिंदा रहने का अधिकार है, निर्बल की नियति नष्ट होना है। गांधी जी की मान्यता थी निर्बल को भी इस दुनिया में जीने का अधिकार है। उन्होंने निर्बल को अहिंसा के हथियार से सबल बनाया और हिंसक हथियारी शक्ति को पराजित करने का रास्ता बताया। पश्चिमी सभ्यता का विकास प्रकृति के साथ शत्रुतापूर्ण संबंध पर आधारित है अर्थात् विकास के लिए प्रकृति को नष्ट करना आवश्यक है। इसी के चलते आज दुनिया में पर्यावरण का संकट उपस्थित हुआ है। अब दुनिया के वैज्ञानिक और समाज शास्त्री प्रकृति के साथ सहअस्तित्व के रास्ते पर चलने का सुझाव दे रहे हैं जो गांधी जी का रास्ता है। हथियारों को नष्ट करने और अहिंसात्मक साधनों को अपनाने की ओर आज विश्व अग्रसर हो रहा है। यह सब नई मानव सभ्यता की सुगबुगाहट है। गांधी जी का ग्राम स्वराज इस प्रक्रिया को तेज करेगा।

गांधी जी का ग्राम स्वराज एक सपना है, एक दूर की मंजिल है जिसकी ओर हमें लंबी यात्रा करनी होगी। इस यात्रा के लिए हमें तैयार करेगा डा. राममनोहर लोहिया के चौखभां राज का जीवंत ग्राम। इसका मतलब है ऐसा ग्राम जो अपनी तमाम शक्तियों को पहचानता हो और उनका उपयोग करना जानता हो। यह गांवों के स्तर पर लोकतंत्र को सजीव करना और वहां सही मायनों में लोकतांत्रिक संस्कृति को स्थापित करना है। जीवंत गांव सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों से मुक्त होगा। उसमें जातिगत भेदभाव की बुराई से लड़ने की क्षमता होगी। वह गांव सभाओं के माध्यम से, जिनमें गांव का प्रत्येक नागरिक बराबरी के स्तर पर अपनी इच्छा को खुलकर व्यक्त कर सकेगा, पंचायतों, ब्लाक समितियों, जिला परिषदों और अंततः राज्य सरकारों तथा केंद्रीय सरकार पर अपनी इच्छा का प्रवर्तन कर सकेगा। वह राज्य के पहले खंभे का काम करेगा। गांव के नागरिक अपने अधिकारों के प्रति पूर्ण जागरूक होंगे। वे अपने लिए विकास की योजनाएं खुद बनाएंगे और अपनी देख–रेख में उन्हें पूरा कराएंगे। वे ऊपर से दिए गए आदेशों का पालन करने वाले मोहरे मात्र नहीं होंगे। वे पंचायतों में चुने गए अपने प्रतिनिधियों और सरकारी तंत्र की नकेल अपने हाथ में रखेंगे। वे गांव के स्तर पर किसी प्रकार के भ्रष्टाचार को पनपने नहीं देंगे। जो कोई गलत काम करेगा उसे गांव की सभा के समक्ष अपनी सफाई देने को मजबूर किया जाएगा तथा उसे उचित दंड दिया जाएगा। प्रत्येक नागरिक गांवों के स्तर पर चल रहे भ्रष्टाचार पर नजर रखेगा और उस मामले को गांव सभा की बैठकों में उठाएगा। जीवंत गांव की पंचायत प्रणाली में गांव सभा सबसे ताकतवर संस्था होगी क्योंकि यह संस्था प्रत्यक्ष लोकतंत्र की संस्था होंगी। अन्य सभी संस्थाएं उसके आगे जवाबदेह होगी। उसके द्वारा पास किए गए प्रस्ताव या उसके द्वारा दिए गए निर्देश पंचायतों पर तथा सरकारी विभागों पर उसी प्रकार बाध्यकारी होंगे जिस प्रकार संसद और विधान सभाओं के प्रस्ताव और निर्देश बाध्यकारी होते हैं। दूसरें शब्दों में गांव सभाओं को वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो विधान सभाओं और संसद को होती हैं। जीवंत गांव की व्यवस्था में कोई सरकारी कर्मचारी घूस नहीं ले सकेगा। कोई जनता के पैसे को हड़प नहीं सकेगा। पुलिस मनमानी नहीं कर सकेगी क्योंकि सारे सरकारी तंत्र को पंचायतों के अधीन और अंततः गांव सभाओं के अधीन काम करना पड़ेगा। उनकी नौकरी पंचायतों और गांव सभाओं के संतोष और प्रसाद पर निर्भर करेगी। ये सारे अधिकार सीधे संविधान से निकलेंगे, वर्तमान प्रणाली की तरह ये राज्य की विधान सभाओं द्वारा कृपा कर फेंके गए टुकड़े की तरह नहीं होंगे।

ग्राम विकास की योजनाओं की विफलता का सबसे बड़ा कारण व्यवस्था का भ्रष्टाचार रहा है। इस बात को 1964–65 में प्रस्तुत की गई संथानम समिति की रिपोर्ट में रेखांकित किया गया था। इस समिति ने भष्टाचार के उपाय के रूप में लोक–सतर्कता को मजबूत करने का सुझाव दिया था। ग्रामीण स्तर पर लोक सतर्कता को मजबूत करने के लिए पंचायतों और ग्राम सभाओं को अधिकार सम्पन्न बनाने के सुझाव दिए गए थे। इस संबंध में समिति का विचार था कि "ग्राम पंचायतों की सफलता के लिए ग्राम सभा की बैठक दो–तीन माह में एक बार अवश्य होनी चाहिए। इन सभाओं में 100–150 ग्रामवासी एकत्र होकर बैठेंगे। इन सभाओं में ग्राम स्तर के भ्रष्टाचार के मामले उठाए जाएं। एक साथ बैठने से लोगों का साहस बढ़ेगा। यदि मामला सच्चा होगा तो संभव है कई ग्रामवासी आरोप का समर्थन करेंगे और इस प्रकार एक संगठित जनमत की सृष्टि होगी।"

भ्रष्टाचार पटवारी–गिरदावर के स्तर का हो, निर्माण विभाग के स्तर का या सहकारी समितियों के स्तर का या अन्य किसी स्तर का इसके पनपने का मूल कारण है कि सारे काम लोगों से छिपाकर किए जाते हैं। लोगों को सब बातों का पता चल जाता है किंन्तु न उनमें अपनी बात कहने का साहस होता है और न ऐसा कोई मंच होता है जहां वे अपनी बात खुलकर कह सकें। ऐसा मंच सिर्फ ग्राम सभा होती है लेकिन इसे पंचायत कानून में बिल्कुल नजरअंदाज किया गया है। इन ग्राम सभाओं की बैठकें मात्र औपचारिक होती हैं। इनकी कार्रवाई का रिकार्ड नहीं रखा जाता और सरकारी अधिकारी इन पर अमल करने के लिए बाध्य नहीं होते। पंचायतों को अधिकार दिया गया है कि वे इन सभाओं की सिफारिशों को चाहें तो माने, न चाहें तो दरकिनार कर

दें। जब तक इन ग्राम सभाओं को संसद और विधान सभाओं की तरह ही शक्ति सम्पन्न नहीं बनाया जाए तब तक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण करना असंभव है। यह बात अब सूचना के अधिकार और जन सुनवाई के आंदोलनों से प्रमाणित हो रही है।

भ्रष्टाचार का गहन अध्ययन करने वाले एक विद्वान जान मांटीरी ने अपनी पुस्तक "करप्शन" में लिखा है: "भ्रष्टाचार के निवारण के लिए जनता की निगरानी अत्यंत आवश्यक है। केवल सख्त कानून बनाकर अथवा जांच–अनुसंधान के लिए नई–नई संस्थाएं बनाने से ही यह काम संभव नहीं हो सकता। इसकी रोकथाम के लिए जनता को संघर्ष के लिए तैयार करना होगा। संघर्ष के लिए अच्छे नागरिकों को संगठित करना आवश्यक होगा ताकि वे इस संघर्ष में सफलता प्राप्त कर सकें।"

पंचायत प्रणाली का लक्ष्य यही होना चाहिए लेकिन यह प्रणाली भी लालफीताशाही में उलझकर बेअसर हो गई है। इससे मुक्ति के लिए ग्राम–सभाओं को सशक्त बनाना जरूरी है। जीवंत ग्राम इसी लक्ष्य को सामने रखकर ग्राम–विकास की गति को तीव्र कर सकता है। ❑

(पृष्ठ 19 का शेष) **ग्रामीण विकास की प्राथमिकताओं.....**

दाल उगाए जाते और गांववासियों को पोषण के सभी गुण गांव की फसल से ही प्राप्त हो जाते। गांव में धान, दलहन, तिलहन के प्रसंस्करण के श्रम–सघन, परंपरागत तरीके जीवित रखे जाते तो पोषण और रोजगाार दोनों की दृष्टि से लाभ मिलता। यदि इतना हो पाता तो गांव में बेरोजगारी और गरीबी दूर करने में हमें बहुत सहायता मिलती।

यह सब करने के लिए हमें कोई नया चमत्कार नहीं करना था, जो कौशल पहले से मौजूद थे उन्हें बस एक नया जीवन देना था। ऐसे अवसर उपलब्ध करवाने थे जिससे जो चरखे, जो धानियां, जो ओखनियां, जो हथकरघे बेकार हो गए थे वे फिर चलने लगते। यही गांधीजी का संदेश था, पर उनके प्रति बार–बार श्रद्धा प्रकट करने के बावजूद हमने अर्थ व्यवस्था संबंधी उनके प्रमुख संदेश को भुला दिया।

यह सच है कि खादी विकास पर कुछ ध्यान दिया गया पर यह गांवों की आत्मनिर्भरता वाली सोच से बहुत अलग तरीके से किया गया और जितनी जरूरत थी उससे बहुत कम भूमिका खादी को दी गई। इस समय भी बहुत देर नहीं हुई है। आज भी हमारे गांवों में बेरोजगार, लाचार बैठे बहुत से तेली, कुम्हार, जुलाहे, लुहार, बढ़ई आदि दस्तकार इंतजार कर रहे हैं कि ग्रामीण विकास की प्राथमिकताओं को बदलकर उनकी प्रतिभा, परंपरागत तकनीक और मेहनत का भरपूर लाभ उठाया जाए।

एक अन्य सुधार पंचायतों के क्षेत्र में भी जरूरी है। कुछ वर्ष पहले पंचायती कानून में कुछ जरूरी सुधार किए गए जो सही दिशा में थे, हालांकि यह सवाल यहां भी उठाना चाहिए कि यह सुधार इतनी देर से क्यों किए गए। आदिवासी क्षेत्रों के जो पंचायती सुधार हुए वे तो और भी अच्छे हैं। पर इन सुधारों की भावना के अनुकूल जितना काम होना चाहिए था वह नहीं हो पा रहा है। जितने अधिकार पंचायतों को मिलने चाहिए वह नहीं मिले हैं। इससे भी बड़ी कमजोरी यह है कि पंचायतों से भ्रष्टाचार दूर करने के लिए कोई बुनियादी काम अभी नहीं हुआ है। अतः पंचायतों में ईमानदारी लाने तथा उन्हें पर्याप्त अधिकार देने के लिए उचित कदम उठाना भी बहुत जरूरी है। ❑

(पृष्ठ 42 का शेष) **ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों.....**

को तो योजना से प्राप्त किया जा सकता है। ग्रामीण भारत का जो एक सामाजिक और आर्थिक विभव है वह इन सड़कों की अनुपस्थिति के कारण दबा पड़ा है।

जिला स्तर पर मास्टर प्लान बनाने की प्रस्तावित कार्यप्रणाली हमारे ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक व्यवस्था को समझने में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करेगी। जिस ग्रामीण भारत की सामाजिक और आर्थिक सम्पदा को समझने में हमें पांच दशकों से भी अधिक लगा उसको इस प्रस्तावित कार्यप्रणाली द्वारा अधिक अच्छी तरह से समझ पाएंगे और इन विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने से हम निम्नलिखित प्राप्त कर पाने में सक्षम होंगे :

- ग्रामीण सड़कों के जालतंत्र का एक प्रमाणित 'डाटाबेस' बन जाना,
- ग्रामीण सड़कों के विकास करने के लिए 'मास्टर प्लान' बनाने की पद्धति का समुचित उपयोग होना,
- ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण सड़कों की वास्तविक स्थिति का सामने उभर कर आना,
- ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों द्वारा शैक्षिक, स्वास्थ्य, वाणिज्य आदि क्षेत्रों में पहुंच का मूल्यांकन होना,
- स्थानीय केन्द्रों में नियोजन करने की, कार्यक्रम बनाने की व बजट बनाने की क्षमता बढ़ना,
- ग्रामीण विकास कार्यक्रम बनाने में दक्षता होना,
- ग्रामीण सड़कों के विकास और रख–रखाव कार्यक्रमों की युक्तिसंगत प्राथमिकता निर्धारण करने में दक्षता प्राप्त होना,
- ग्रामीण सड़कों के विकास के लिए बजट बन सकना और राजकोषीय संसाधनों का युक्तिसंगत प्रबंध हो सकना,
- बहु–अभिकरणीय योजनाओं व कार्यक्रमों के लिए एक ही मास्टर प्लान द्वारा निधि प्रबंध सम्भव होना,
- किसी भी विपदा में सामयिक, दक्ष व युक्तिसंगत प्रबंध का उपलब्ध होना,
- योजना आयोग के लिए समूचे देश में जिला स्तर पर योजना बनाने के लिए एक सी प्रणाली विकसित होना

संदर्भ

1. सिकदर, प्रबीर कुमार, जून, 2000, "How to Provide Total Road Connectivity to Rural India", इन्डियन हायवे, भाग–28, संख्या–6
2. कुमार और कुमार 1998, Use Friendly Models for Planning Rural Roads", ट्रांस्पेर्टेशन रिसर्च रिकार्ड, 1652
3. केन्द्रीय सड़क अनुसंधान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित लेख, 1994, Rural Road Development in India" Part 1 & 2.

(आवरण पृष्ठ दो से जारी)

जिला, मध्यस्तर तथा गांव स्तर की त्रिस्तरीय पंचायती राज प्रणाली की स्थापना द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में विकास के लिए महत्वपूर्ण परिवर्तन के लिए काम शुरू कर दिया गया है। लोगों की भागीदारी तथा स्थानीय प्रशासन को मजबूत करने के लिए ग्राम पंचायत तथा ग्राम सभा अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई हैं।

स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना नामक नई योजना पिछले स्वरोजगार कार्यक्रमों जैसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, ग्रामीण महिला बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण कारीगरों को उन्नत औजारों की आपूर्ति तथा गंगा कल्याण योजना और दस लाख कुओं की योजना की खूबियों और खामियों को ध्यान में रखकर बनाई गई है। इसमें स्वरोजगार के विभिन्न पहलुओं जैसे ग्रामीण गरीबों के स्व–सहायता समूहों का संगठन, क्षमता निर्माण प्रशिक्षण, सक्रियता समूहों का आयोजन, ढांचागत निर्माण, प्रौद्योगिकी ऋण तथा विपणन को शामिल किया गया है। दिसम्बर, 1999 तक की प्रगति रिपोर्ट के अनुसार इस अवधि के दौरान कुल 58,376 स्वसहायता समूहों का निर्माण किया गया है तथा 2,67,492 स्वरोजगारियों को सहायता दी गई। सुनिश्चित रोजगार योजना एक मजदूरी रोजगार कार्यक्रम है जो पूरे देश में जिला/जिला परिषद स्तर पर कार्यान्वित की जा रही है। वर्ष 1999–2000 के दौरान सुनिश्चित रोजगार योजना के अधीन 1202.62 लाख दिवस का रोजगार प्रदान किया गया।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम का कार्यान्वयन ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा किया जाता है। कार्यक्रम में तीन योजनाएं हैं: राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना तथा राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना। राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम शत–प्रतिशत केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम है तथा इसके तहत वृद्ध बेसहारा लोगों को 75 रुपये प्रतिमाह पेंशन, परिवार के मुख्य जीविकोपार्जन की मृत्यु हो जाने पर शोकसंतप्त परिवार को 10,000 रुपये तथा गरीब महिला को दो जीवित प्रसव तक 500 रुपये मातृत्व लाभ दिया जाता है। 1999–2000 के दौरान राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत 54.52 लाख परिवार लाभान्वित हुए जिनमें से 46.17 लाख परिवार राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना के अंतर्गत, 7.11 लाख परिवार राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना तथा 1.24 लाख परिवार राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना के अंतर्गत लाभान्वित हुए।

"अन्नपूर्णा" नामक योजना के कार्यान्वयन के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय नोडल मंत्रालय है। योजना का उद्देश्य उन गरीब तथा वृद्ध नागरिकों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करना है जिनकी देखभाल करने वाला कोई नहीं है। योजना के अंतर्गत 13 लाख से अधिक उन वृद्धों को प्रतिमाह 10 किलोग्राम अनाज मुफ्त देने का प्रावधान है जो वृद्धावस्था पेंशन के पात्र हैं पर जिन्हें इस समय यह लाभ नहीं मिल रहा है।

महिलाओं को अधिकार प्रदान कर उन्हें विकास की मुख्य धारा में लाना सरकार के लिए बड़ी प्राथमिकता है। संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 के तहत महिलाओं को ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों में आरक्षण प्रदान किया गया है। परिणामतः ग्राम पंचायतों में 6,55,629 महिलाएं, पंचायत समितियों में 37,523 महिलाएं तथा जिला परिषदों में 3,161 महिलाएं हैं। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में महिलाओं, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों, विकलांगों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया है। ऐसा प्रावधान है कि प्रत्येक खंड में निर्मित स्व–सहायता समूहों में 50 प्रतिशत सिर्फ महिलाओं के लिए होने चाहिए जो स्वरोजगारियों का कम से कम 40 प्रतिशत होगा। जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के तहत ऐसा प्रावधान है कि रोजगार के अवसरों का 30 प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षित होगा। इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत मकानों का आवंटन परिवार की महिला के नाम से अथवा पति और पत्नी के संयुक्त नाम से किया जाता है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की सफलता बहुत हद तक ग्रामीण जनता में जागरूकता पैदा करने पर निर्भर करती है तथा इस प्रयास में सूचना, शिक्षा तथा संचार की महत्वपूर्ण भूमिका से मंत्रालय पूर्णतः परिचित है। ग्रामीण विकास में सूचना, शिक्षा तथा संचार के प्रयासों को सुदृढ़ करने का एक आधार उपलब्ध कराने के लिए मीडिया संबंधी सलाहकार समिति ने अपनी रिपोर्ट मंत्रालय को प्रस्तुत कर दी है। प्रधानमंत्री जी द्वारा इस वर्ष फरवरी में पहली इंडिया रूरल डेवलपमेंट रिपोर्ट – 1999 जारी की गई थी। यह रिपोर्ट राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद ने संकलित और प्रकाशित की जिसमें विकास और गरीबी में क्षेत्रीय विषमताओं की विषय–वस्तु पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के संदर्भ में ग्रामीण विकास पर ध्यान केन्द्रित रखने की आवश्यकता बढ़ रही है। ग्रामीण गरीबी के विरुद्ध अथक संघर्ष गांवों में जरूरतमंद तथा दलित लोगों तक सेवाओं को सीधा पहुंचाना, मंत्रालय के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बना रहेगा। इस मंत्रालय का प्रयास एक ऐसे भविष्य की ओर अग्रसर होना है जिसमें प्रत्येक गांव सड़क से जुड़ा होगा, सभी गांवों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध होगा, गांव में प्रत्येक परिवार के पास एक मकान होगा तथा सभी के पास उत्पादक रोजगार के अवसर होंगे। ❑

साभार : वार्षिक रिपोर्ट 1999–2000, ग्रामीण विकास मंत्रालय

आर एन. /708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या :डी (डी एल) 12057/2000
आई.एस.एन.एन. 0971–8451
पूर्व भुगतान के बिना के अधीन डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)–55

R.N./708/57
P&T Regd. No. D (DL) 12057/2000
ISSN 0971-8451
Licenced under U(DN)-55 to Post without pre-payment of DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक: अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया–II, नई दिल्ली–20 संपादक: बलदेव सिंह मदान